संचित अनाज तथा गृहवासी नाशक जीव

(परिचय एवं नियन्त्रण)

लेखक
डॉ० एस० एन० पाण्डेय

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रस्तावना

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपनी स्थापना के 16 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 1985 को 17वें वर्ष मे प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि में विश्व साहित्य के विभिन्न विषयों के उत्कृष्ट ग्रन्थो के हिन्दी अनुवाद तथा विश्वविद्यालय के शैक्षणिक स्तर के मौलिक ग्रन्थो को हिन्दी मे प्रकाशित कर अकादमी ने हिन्दी जगत के शिक्षकों, छात्रों एवं अन्य पाठकों की सेवा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी मे शिक्षण के मार्ग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हिन्दी में ऐसे ग्रन्थो का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो के अनुकूल हों। विश्वविद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्रन्थ जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड़ मे अपना समुचित स्थान नही पा सकते हो और ऐसे ग्रन्थ भी जो अंग्रेजी की प्रतियोगिता के सामने टिक नही पाते हों, अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान-विज्ञान के हर विषय मे उन दुर्लभ मानक ग्रन्थों को प्रकाशित करती रही है और करेगी जिनको पाकर हिन्दी के पाठक लाभान्वित ही नहीं, गौरवान्वित भी हो सके। हमे यह कहते हुए हर्ष होता है कि अकादमी ने 325 से भी अधिक ऐसे दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन किया है जिनमे से एकाधिक केन्द्र, राज्यो के बोर्डों एवं अन्य संस्थाओ द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं तथा अनेक विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा अनुशंसित।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को अपने स्थापना काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होता रहा है तथा राजस्थान सरकार ने इसके पल्लवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अतः अकादमी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति मे उक्त सरकारो की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

संचित अनाज तथा गृहवासी नाशक जीवो के बारे में एक साथ विस्तृत विवरण देने वाली यह प्रथम पुस्तक है। पुस्तक की रचना भारतीय कृषि विश्वविद्यालयों के स्नातक स्तर—बी. एससी. (एजी.) के पाठ्यक्रमों को ध्यान मे रखकर की गई है। अनाज संचयन की विधियो से लेकर संचित अनाज के नाशक जीवों जैसे—कीट, चरुथी, कवक, पक्षी व स्तनधारियों का परिचय, जीवन-इतिहास, उनके द्वारा क्षति तथा उसका आकलन एवं नियंत्रण के विभिन्न उपायो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

हम इस पुस्तक के लेखक डॉ० एस० एन० पाण्डेय, कीट विज्ञान विभाग, कृषि अनुसंधान केन्द्र, नौगांव, समीक्षक डॉ० चंद्र प्रसाद सिंह यादव, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, जोबनेर एवं भाषा सम्पादक श्री प्रकाश परिमल, जयपुर के प्रति प्रदत्त सहयोग हेतु आभारी हैं ।

हीरालाल देवपुरा	डॉ० राघव प्रकाश
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी एवं	निदेशक
शिक्षा मंत्री, राजस्थान सरकार, जयपुर	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर

परिचय

विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न अन्न समस्या के तीन प्रमुख समाधान है—1. जनसंख्या वृद्धि को रोकना, 2. उत्पादन बढ़ाना तथा 3. उत्पाद को क्षति से बचाना। यदि खाद्यान्न-उत्पादन पर दृष्टि डाली जाये तो हमे ज्ञात होगा कि हमारे देश में खाद्यान्न-उत्पादन 1949–50 में 5.4 करोड़ टन से बढ़कर 1970–71 मे 10 84 करोड़ टन तथा 1978-79 में 13.12 करोड़ टन हो गया (इण्डिया 1980)। इस उत्पादन-वृद्धि के फलस्वरूप हमे 1979 मे अनाज का आयात बिल्कुल नही करना पड़ा, उल्टे हमने रूस, मॉरीसस, वियतनाम, बंगला देश आदि देशो को अनाज का निर्यात भी किया। लेकिन उत्पादन से कही अधिक महत्त्वपूर्ण है, उत्पाद की सुरक्षा। हालांकि खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि के साथ-साथ उसके संचयन तथा सुरक्षित रखने के साधनो मे भी वृद्धि एवं सुधार हुआ है, लेकिन यह उतना नही हो पाया जितना होना चाहिए। ऐसा अनुमान है कि भारतवर्ष मे त्रुटिपूर्ण संचयन तथा कीट, पक्षी, स्तनधारी जन्तु तथा सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा कुल उत्पाद का लगभग 10 प्रतिशत अभी भी नष्ट हो जाता है, जो करीब 5 करोड़ लोगों के खाने के लिए पर्याप्त है।

भारत सरकार के खाद्य विभाग द्वारा खाद्यान्नों की क्षति 9.33 प्रतिशत अथवा 73 लाख टन आंकी गई है। जिसमें 1 68 प्रतिशत खलिहान में, 0.15 प्रतिशत ढुलाई में, 0 92 प्रतिशत संसाधन के दौरान, 2.5 प्रतिशत चूहों द्वारा, 0.85 प्रतिशत पक्षियों द्वारा, 2.55 प्रतिशत कीड़ों द्वारा तथा 0.68 प्रतिशत नमी द्वारा होनी पाई गई है। बिड़ला वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार हमारे देश में फसल की कटाई के बाद से कुल क्षति लगभग 12.8 प्रतिशत होती है तथा इस कुल हानि की करीब 70 प्रतिशत हानि संचयन के दौरान होती है। इस प्रकार यदि हम 12.8 प्रतिशत क्षति के आधार पर ही गणना करें तो सन् 1951–52 से सन् 1976–77 तक लगभग 25.8 करोड़ टन खाद्यान्न नष्ट हो चुका। ध्यान देने की बात है कि इतना उत्पादन हमारे देश मे पिछले दो वर्षों में भी नहीं हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 1976 मे विश्व मे 10 7 करोड़ टन अनाज नष्ट हो गया जिससे करीब 16.8 करोड़ लोगो की आवश्यकता-पूर्ति हो सकती थी। एक अन्य अनुमान के अनुसार यदि विकासशील देशों मे कटाई के बाद होने वाली अनाज की क्षति को 50 प्रतिशत भी कम किया जा सके तो बहुत से देशो की अन्न आयात करने की समस्या समाप्त हो जायेगी। संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने सन् 1975 के अपने सातवें विशेष अधिवेशन मे इस लक्ष्य को सन् 1985 तक प्राप्त करने का निर्णय किया है।

खाद्यान्न-उत्पादन बढ़ाने का सबसे अधिक प्रभाव अनाज को संचित करने के साधनों तथा संचयन के दौरान होने वाली क्षति को बचाने के उपायों पर पड़ा। पहले प्रायः किसान अपने ही स्तर पर अनाज को खत्तियों में तथा भूसे में दबाकर, कमरों में ढेर करके, बोरियों में भरकर अथवा मिट्टी की बनी कोठियों में सं[illegible] किया करते थे। परन्तु आज-कल अनाज संचयन के लिए भारत सरकार द्वा[illegible] संचालित भारतीय खाद्य निगम तथा वेयर हाउसिंग कार्पोरेशन जैसे संगठनों की से[illegible] उपलब्ध है। इनके पास बड़े-बड़े गोदाम, धातु की बनी कोठियाँ तथा साइलो हैं[illegible] भारतीय खाद्य निगम के पास 218 06 लाख टन तथा वेयर हाउसिंग कार्पोरेशन के पास 8.6 लाख टन खाद्यान्न-संचयन की क्षमता है। इसके अलावा घरों में भं[illegible] संचयन के लिए अब उन्नत किस्म की धातु की बनी कोठियाँ उपलब्ध हैं। आलू-प्याज जैसे सामान्य अवस्था में अधिक समय तक संचित नहीं किये जा सकने वाले पदार्थों के संचयन के लिए शीत-भण्डारण की व्यवस्था है। बोने योग्य उत्तम बीज संचित करने के लिए राष्ट्रीय बीज निगम तथा राज्य बीज निगम की भी स्थापना की गई है।

ऐसी मान्यता है कि प्रारम्भ में जब भण्डारण की सुविधाएँ नहीं थी तब संचित अनाज को क्षति पहुँचाने वाले कीट, चूहे और चीटियाँ फसल कटने से पहले ही खेतों में ही संचित अनाज को क्षति पहुँचाया करते थे। बाद में मनुष्य द्वारा अन्न संचयन करने पर ये वहाँ संचित अनाज के शत्रु हो गए। कुछ अन्य कीट जो स्वभावतः लकड़ी छेदक थे अथवा पेड़ की छाल के नीचे रहते थे कालान्तर में संचित अनाज के शत्रु कीटों के रूप में विकसित हुए।

संचयन के दौरान क्षति पहुँचाने वाले बहुत से शत्रु कीट विदेशों से अन्य सामग्रियों के साथ हमारे देश में प्रविष्ट हुए हैं। उदाहरण के लिए—एन्गोमोइस ग्रेन मॉथ, फ्रांस तथा सा-ट्थ ग्रेन बीटल, सुरिनाम से आये हैं। हमारे देश से भी अनेक शत्रु कीट जैसे—लेसर ग्रेन बोरर तथा राइस वीविल आदि विदेशों को इसी प्रकार पहुँच गये हैं।

खाद्यान्न-सुरक्षा की समस्या भी उतनी ही पुरानी है जितनी खाद्यान्न संचयन की। अनाज को कीड़ों के आक्रमण से बचाने का सबसे अच्छा तरीका है कि उसे भली-भाँति सुखाकर रखा जाये ताकि उसमें नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक न रहने पाये। इसके अतिरिक्त प्रसन को रोकने के लिए अनेक प्रकार के भौतिक, यान्त्रिक तथा रासायनिक उपाय हैं। भारत सरकार के खाद्य मन्त्रालय ने तो "अन्न-सुरक्षा अभियान" चला रखा है, जिसके अन्तर्गत विशेषज्ञ गावों में जाकर लोगों को अन्न-सुरक्षा के उपायों का प्रशिक्षण देते हैं। उनका नारा है—"दाने-दाने की सुरक्षा।"

खाद्यान्नो के अतिरिक्त मनुष्य को तथा उससे सम्बन्धित अन्य घरेलू वस्तुओ को अनेक जन्तु प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाते हैं। मच्छर, मक्खी, खटमल तथा जूँ आदि ऐसे कीट हैं जिनका मनुष्य से सीधा सम्पर्क रहता है। घर मे काम आने वाली अन्य वस्तुएँ जैसे—पहनने-ओढने के कपड़े, बिस्तर, पर्दे आदि से क्लॉथ-मॉथ का घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी व्यक्ति ने ठीक कहा है कि "मेरे कपड़े अन्य लोगो को भले ही अच्छे न लगते हो, पर वे मुझे तथा उन पर लगने वाले कीड़ो को समान रूप से पसन्द हैं।" किताब-कापियो पर बुक लाइस, सिल्वर फिश, दीमक तथा चूहा, लकडी के सामानो पर दीमक, चूहा तथा घुन; कमरे मे बिछे कार्पेट पर कार्पेट बीटल तथा चमडे से बनी वस्तुओं को हानि पहुँचाने वाले कीट एव कवक से सभी परिचित हैं। इनके अलावा घर में रखी हुई सब्जी, फल तथा अन्य खाद्य वस्तुओं पर तिलचटा, पक्षी, चूहा तथा कवक का आक्रमण एक सामान्य घटना है। हमारे काम आने वाले घरेलू पशुओ मे मक्खी, चीचड़े, जूँ तथा वरुथी आदि से अनेक प्रकार की बीमारियाँ भी फैलती हैं।

गृहवासी शत्रु कीटो तथा अन्य जीवो से छुटकारा पाने का सबसे अच्छा तरीका घर मे सफाई रखना है। लेकिन हमारे देश के अधिकाश घरो में सफाई का अभाव रहता है। अतः गृहवासी शत्रु जीवो के नियन्त्रण के लिए भी अनेक प्रकार के कीटनाशियो तथा अन्य रसायनो का विकास हुआ है।

—लेखक

विषय-सूची

□□□

1
अनाज संचयन

कटाई के बाद अनाज का संचयन मुख्यतया दो एजेन्सियो द्वारा किया जाता है—प्रथम–गैर-सरकारी, द्वितीय–सरकारी । गैर-सरकारी एजेन्सी में एक तो उत्पादक स्वयं तथा दूसरा व्यापारी वर्ग है जो उत्पादक से अनाज लेकर अपने पास संचित करता है । सरकारी क्षेत्र मे अनाज का संचयन भारतीय खाद्य-निगम तथा वेग्रर हाउसिंग कार्पोरेशन द्वारा किया जाता है । सरकारी क्षेत्र में अपने देश में उत्पन्न अनाज के अतिरिक्त विदेशो से आयातित अनाज भी संचित किया जाता है । अनाज संचयन के मुख्य दो प्रकार हैं । 1. बोरियो मे भरकर तथा 2. ढेर के रूप में, जिसे विपुल आयतन संचयन कहते हैं ।

कटाई के बाद अनाज को भूसे से अलग करने, इसकी ढुलाई, संचयन तथा अंत मे उपभोक्ता तक पहुँचाने की क्रिया को एक पाइप लाइन द्वारा दर्शाया जा सकता है (चित्र 1) इस पूरी अवधि मे अनाज अनेक कारकों के सम्पर्क मे आता है तथा उनसे प्रभावित होता है । अनाज को भूसे से अलग करने की क्रिया में कुछ दाने टूट जाते हैं तथा उसमें मिट्टी, कंकड़ तथा खरपतवार के बीज आदि अवांछनीय पदार्थ
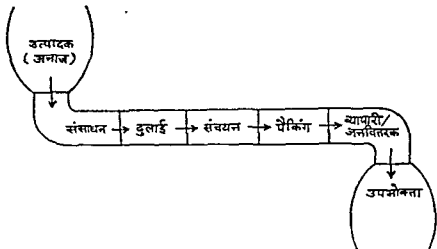
चित्र 1. उत्पादक से उपभोक्ता तक अनाज की पाइप लाइन

मिल जाते हैं। इसके बाद संचयन के लिये अनाज को उत्पादक के घर, व्यापारी के पास अथवा सरकारी एजेन्सियों तक ले जाया जाता है। परिवहन के दौरान अनाज के दाने टूट सकते है, गिर सकते है अथवा जानबूझकर उन्हे गायब किया जा सकता है। संचयन काल मे अनाज पर अनेक अजैव कारको जैसे ताप, नमी, हवा तथा जैवकारक जैसे कवक, बैक्टीरिया, कीट, वरूथी, पक्षी, चूहा आदि का प्रभाव पड़ता है। इन कारको का प्रभाव संचयन के स्थान तथा प्रयुक्त साधन के अनुसार कम या अधिक होता है। संचयन के बाद उपभोग के लिये निकालने, उसे बोरियों मे बन्द करने तथा परिवहन के दौरान पुनः मजदूरो की अकुशलता अथवा जानबूझ कर की गई लापरवाही से अनाज की हानि होती है। इस अवधि मे अनाज का संदूषण भी हो सकता है। व्यापारी के पास संचयन के दौरान भी संदूषण की बहुत सम्भावना रहती है। इस प्रकार विभिन्न कारको से प्रभावित अनाज उपभोक्ता तक पहुँचता है।

संचयन पारिस्थितिक तंत्र

पर्यावरण के जैव तथा अजैव कारको के बीच पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप पदार्थों के आपसी आदान-प्रदान के अध्ययन को हम पारिस्थितिक तंत्र कहते है। पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक तो होता ही है पर कुछ मानव निर्मित कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र भी होते हैं। प्राकृतिक तंत्र में ऊर्जा के प्रमुख स्रोत-सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का स्थिरीकरण तथा प्रवाह होता है। प्रकार्यात्मक दृष्टि से पारिस्थितिक तंत्र के दो मुख्य संघटक होते हैं—प्रथम उत्पादक तथा द्वितीय उपभोक्ता; उत्पादक अपना भोजन स्वयं साधारण अकार्बनिक पदार्थों से बनाते हैं, जिससे ऊर्जा का स्थिरीकरण होता है। इसीलिए इन्हे स्वय
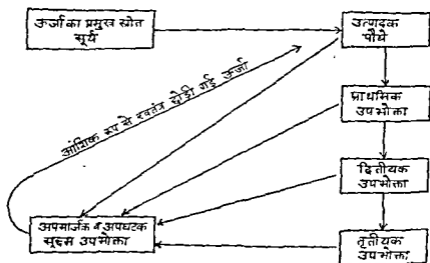
चित्र 2. प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की कार्य प्रणाली

भोजी संघटक भी कहते हैं। उदाहरण के लिए पौधे। इसके विपरीत उपभोक्ता उत्पादकों द्वारा निर्मित भोजन पर निर्भर करते हैं, वे स्वयं अपना भोजन नहीं बना सकते, इसीलिए उन्हें परभोजी संघटक भी कहा जाता है। इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादक-उपभोक्ता संघटकों के माध्यम से नियमित रूप से ऊर्जा का स्थिरीकरण तथा प्रवाह होता रहता है (चित्र 2)। इसके फलस्वरूप प्रत्येक संघटक को अपना कार्य करने के लिए ऊर्जा मिलती रहती है तथा ऊर्जा का प्रवाह भी होता रहता है। इसके कारण प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में सन्तुलन तथा समस्थाय बना रहता है। बड़े-बड़े जंगल, तालाब, झील आदि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मानव निर्मित कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र भी हैं जिनमें निरन्तर नियमित रूप से ऊर्जा का स्थिरीकरण तथा प्रवाह नहीं होता तथा सन्तुलन व समस्थाय स्थापित नहीं हो पाता। कृषि तंत्र (Agro-ecosystem), चरागाह तंत्र (Pasture ecosystem), मत्स्य-ताल तंत्र (Fish pond ecosystem), संचयन तंत्र (Storage ecosystem) आदि कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र के उदाहरण हैं।

संचयन तंत्र में ऊर्जा का प्रमुख स्रोत स्वयं उत्पादक अनाज (Producer grain) होता है, जो नियमित रूप से ऊर्जा का उत्पादन नहीं कर सकता, इसमें पौधों द्वारा स्थिर की गई ऊर्जा कंप्मूल में दवा की भांति बन्द रहती है। इस तंत्र के उपभोक्ता अनाज भक्षी जन्तु जैसे कीट, बरूथी, पक्षी व चूहे हैं। कुछ अनाज पर निर्भर रहने वाले कवक भी इसी श्रेणी में आते हैं। इनके अलावा कुछ अन्य उप-

चित्र 3 संचयन तंत्र की कार्य प्रणाली
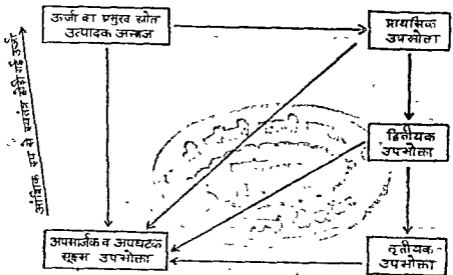
भोक्ता भी हैं जो अनाज भक्षी जन्तुओं तथा कवक आदि का भक्षण करते हैं तथा कुछ मृत जैव पदार्थों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। अपमार्जक (Scavangers) तथा अपघटक (decomposers) इस प्रकार के उपभोक्ता हैं। ये कुछ ऊर्जा अपने कार्य में ले लेते हैं तथा कुछ पुन. उपयोग के लिए पर्यावरण में स्वतन्त्र छोड़ देते हैं (चित्र 3)।

संचयन तंत्र के मुख्य लक्षण

1. इसमें ऊर्जा का प्रमुख स्रोत अनाज होता है जिसमें सूर्य से पौधों द्वारा स्थिर की गई ऊर्जा कैप्सूल में दवा की भाँति संचित रहती है।

2. इसमें स्वयं भोजी संघटक अर्थात् उत्पादक नहीं होते अतः ऊर्जा का स्थिरीकरण तथा नवीनीकरण नियमित रूप से प्राकृतिक तंत्र की तरह नहीं होता है।

3. चूँकि अनाज का संचयन एक निश्चित अवधि-कुछ महीने अथवा वर्ष के लिए किया जाता है अतः यह तंत्र लघुकालीन होता है तथा इसमें सातत्य नहीं होता।

4. विभिन्न प्रकार के अनाजों का संचयन अलग-अलग किये जाने के कारण इसमें संघटकों की विषमता नाम मात्र को या बिल्कुल नहीं होती।

5. मानवीय हस्तक्षेप के कारण तंत्र के विभिन्न संघटकों में पारस्परिक सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं रहता—जिससे सन्तुलन तथा समस्थाय स्थापित नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप शत्रु जन्तुओं का प्रकोप अधिक होता है।

6. अनाज की सुरक्षा के लिए भण्डार को वायुरोधी बनाया जाता है तथा कृत्रिम रूप से शत्रु-जन्तु-नाशी रसायनों का उपयोग किया जाता है जो प्राकृतिक पारिस्थिति-तंत्र में नहीं पाया जाता।

संचयन तंत्र के संघटक एवं उनका प्रभाव'

(1) अजैव संघटक

(अ) ताप—जैव कारकों की सभी उपापचयी क्रियाएँ ताप पर निर्भर करती हैं, अतः ताप संचयन तंत्र का प्रमुख संघटक है। समस्त उपापचयी क्रियाओं के लिए ताप की एक अनुकूलतम सीमा होती है जिसके अन्दर ये सुचारु रूप से चलती हैं। उससे कम या अधिक ताप उपयुक्त नहीं होता, कीटों के लिए प्रायः ताप की अनुकूलतम सीमा 25° सें. से 35° सेंटीग्रेड है। इससे कम या अधिक ताप होने पर जैव क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं और रुक भी सकती हैं।

संचयन के दौरान भण्डारों में कभी भी ताप स्थिर नहीं रहता बल्कि बाह्य पर्यावरण के प्रभाव से घटता-बढ़ता रहता है। इसका प्रभाव शीतरक्त प्राणियों पर अधिक होता है। बाह्य पर्यावरण के अतिरिक्त अनाज में वर्तमान कीटों की जैव क्रियाओं के कारण भी ताप में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप कीट संचित अनाज के मध्य से परिधि की ओर चले जाते हैं जहाँ ताप कुछ कम होता है। लेकिन ताप

मे बहुत अधिक कमी होने पर जैव क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं जिससे उनकी भोजन की आवश्यकता भी कम हो जाती है, फलस्वरूप उनका वृद्धिकाल बढ़ जाता है और वे भोजन की कमी के कारण मर जाते हैं। परन्तु कुछ कीड़े काफी कम ताप पर भी निर्वाह करने की क्षमता रखते है जो शीत सहनशील (Cold-hardy) कहलाते हैं। अधिक ताप की दृष्टि से अधिकाश कीड़े 40° सेन्टीग्रेड या इससे अधिक ताप पर शीघ्र ही मर जाते है, केवल खपरा, बीटल, ग्रेन बोरर तथा बरुथी–एकेरस ही 44° सेन्टीग्रेड तक ताप सहन करने की क्षमता रखते हैं।

ताप की सहनशीलता में विभिन्नता के कारण भण्डारण के कुछ कीट, देश के विभिन्न भागों में कही कम और कही अधिक संख्या में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए खपरा बीटल उत्तरी भारत के भण्डारो मे अधिक तथा दक्षिण भारत में बहुत कम पाया जाता है।

कीड़ों के अलावा कवक के प्रकोप तथा नमी मे वृद्धि के कारण भी भण्डार का तापमान बढ़ जाता है। नमी की वृद्धि के कारण कवक तथा कीट दोनो का प्रकोप बढता है जो तापमान-वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं।

कीड़ो की विभिन्न अवस्थाओ में परिवर्धन के लिए ताप की जिस सीमा की आवश्यकता होती है उसे देहली ताप (threshold temperature) कहते हैं। ताप की जिस सीमा में वृद्धि बिल्कुल नही होती है उसे परिवर्धन देहली (development threshold) कहते हैं। दाल के घुन—कैलेसोब्रूकस मैकुलेटस पर ताप के प्रभाव के अध्ययन मे ज्ञात हुआ है कि इसका परिवर्धन देहली 15° से 20° सेन्टीग्रेड के बीच है। ताप की अनुकूलतम सीमा 20° से 30° सेन्टीग्रेड है। 20° सेन्टीग्रेड पर परिवर्धन काल सबसे अधिक लम्बा 53 दिन का तथा 35° सेन्टीग्रेड पर सबसे छोटा 18 दिन का पाया गया। नियत सीमा से अधिक ताप मे वृद्धि पर भी परिवर्धनकाल मे वृद्धि पाई गई तथा 38° सेन्टीग्रेड पर जीवन चक्र 25–28 दिन मे पूरा हुआ (मुकर्जी तथा चावला, 1964)।

(ब) नमी—संचयन के दौरान अनाज को क्षति पहुँचाने वाले कीटो की उपापचयी क्रियाओ के लिए आवश्यक नमी अनाज से ही प्राप्त होती है। ऐसा पाया गया है कि कीडों की वृद्धि के लिए अनाज मे 14 प्रतिशत नमी अनुकूलतम (optimum) होती है। इससे अधिक नमी होने पर अनाज में जैव-रसायनिक क्रियाएँ बढ़ जाती हैं, परिणामस्वरूप वह अंकुरित हो जाता है तथा उसमे से बदबू भी आने लगती है।

अनाज में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से कम होने पर साधारणतया उसमे कीटो का विकास सम्भव नही होता। लेकिन कुछ कीट जैसे—**ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरिआ, ट्राइबोलियम कैस्टेनियम तथा कैलेसोब्रूकस एनेलिस** आदि ऐसे भी हैं जो 1 प्रतिशत नमी पर भी अपना जीवन निर्वाह कर सकते है।

संचित अनाज में नमी की अधिकता फसल को भली प्रकार सूखने से पहले ही काट लेने, संचयन से पहले दानों को भली-भाँति न सुखाने अथवा बरसात के दिनों में भण्डार को खुला छोड़ देने के कारण हो सकती है, इसके अतिरिक्त नमी में वृद्धि जैव सघटकों जैसे कीट, बरूथी, पक्षी तथा चूहों के मल-मूत्र त्याग के कारण भी हो सकती है।

(स) हवा—जैव पदार्थों के निर्वाह के लिए आवश्यक होने के कारण संचयन के लिए भी हवा बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा पाया गया है कि वाह्य पर्यावरण के प्रभाव से संचित अनाज में नमी तथा ताप की मात्रा भी घटती-बढ़ती रहती है। ताप में परिवर्तन के कारण कभी-कभी अनाज में गर्म स्थल (heat spots) बन जाते हैं। इसके अलावा लोहे के भण्डारों में रखा हुआ अनाज परिधि की ओर अधिक गर्म हो जाता है इस प्रकार संचित अनाज के कुछ विशेष भागों में ताप व नमी में परिवर्तन तभी होता है जब भण्डार में हवा का परिसंचरण नहीं होता। हवा के अभाव में तथा ताप व नमी में परिवर्तन के कारण अनाज के पोषक तत्वों की भी हानि होती है और उसकी अंकुरण क्षमता भी कम हो जाती है।

अनाज के अतिरिक्त उसको क्षति पहुँचाने वाले कारकों जैसे कवक, कीट, बरूथी, चूहे आदि के लिए भी हवा आवश्यक है। यदि भण्डार में ऑक्सीजन की मात्रा 2.5 प्रतिशत से कम हो जाय तो उसमें जन्तुओं का विकास सम्भव नहीं होता। इस प्रकार हवा के अभाव में अधिक नमी वाले अनाज को भी सुरक्षित रखा जा सकता है परन्तु ऐसे अनाज में कुछ ऐसे जैव-रसायनिक परिवर्तन होते हैं। जिससे दानों की अंकुरण क्षमता कम हो जाती है तथा वे गुणता की दृष्टि से भी खराब हो जाते हैं तथा मनुष्य के खाने योग्य नहीं रह जाते। यही कारण है कि विदेशों में जानवरों को खिलाए जाने वाले अनाज को वायुरोधी गोदामों में रखने की अनुशंसा की जाती है।

वायुरोधी भण्डारों में जो कुछ ऑक्सीजन पहले से रहती है वह कीट-ग्रसन के बाद उनके श्वसन के परिणामस्वरूप समाप्त हो जाती है अतः जन्तुओं का विकास नहीं हो पाता। ऐसे भण्डारों में वाह्य पर्यावरण की नमी का अनाज द्वारा शोषण भी नहीं हो पाता अतः अनाज अधिक समय तक शुष्क रखा जा सकता है।

ऊपर किए वर्णन से यह स्पष्ट है कि अनाज को स्वस्थ तथा खाने योग्य बनाए रखने के लिए भण्डार में हवा का होना आवश्यक है। साथ ही साथ उसे ग्रसन से मुक्त रखने के लिए हवा का अभाव भी आवश्यक है। अतः भण्डार की रचना करते समय इन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि भण्डार को समयानुसार वायुरोधी तथा वायु-युक्त किया जा सके।

(द) रासायनिक तत्व—अन्न में वर्तमान रासायनिक तत्वों का प्रभाव जन्तुओं के निर्वाह, परिवर्धन-काल, जीवन-काल तथा अण्डा देने की क्षमता पर पड़ता है।

अनाज मे यदि कार्बन तथा नाइट्रोजन का अनुपात 15 : 1 से 30 : 1 की सीमा में हो तो वह सूक्ष्म जीवाणुओ के उपभोग के योग्य रहता है और अधिकांश अनाजो में यह अनुपात पाया जाता है। अनाज में वर्तमान कार्बन-नाइट्रोजन के अलावा संचयन तंत्र मे उपस्थित कीट, बरुथी तथा अन्य जन्तुओ के उपापचयी उत्पादों द्वारा भी कार्बन-नाइट्रोजन का वांछित अनुपात प्राप्त करने मे सहायता मिलती है। यही कारण है कि संचयन तंत्र मे उपस्थित जन्तुओं के साथ-साथ कवक तथा अन्य सूक्ष्म-जीवाणुओं की वृद्धि अधिक होती है।

संचयन तत्र के अन्य संघटक जैसे ताप, नमी तथा संचयन-काल का भी प्रभाव अनाज के रासायनिक तत्वो पर पड़ता है, फ्रॅप्स तथा कैमेरर (1937) ने पाया कि 35° सेन्टीग्रेड पर संचित पीली मक्का मे एक वर्ष मे कैरोटीन की हानि 34 प्रतिशत तक होती है, लेकिन उसके पश्चात् बहुत कम हानि होती है। गेहूँ पर संचयन-काल तथा नमी की मात्रा के प्रभाव के सम्बन्ध मे बेफील्ड तथा ओडोनेल (1945) ने पाया कि 5 माह मे 17 प्रतिशत नमी वाले गेहूँ के दानो मे थायमीन की मात्रा 30 प्रतिशत कम हुई जबकि इसी अवधि मे 12 प्रतिशत नमी वाले दानो मे थायमीन की कमी केवल 12 प्रतिशत हुई। इसी प्रकार पाया गया है कि एक वर्ष से अधिक समय तक संचित मक्का में विटामिन ए की मात्रा 70 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

(घ) संख्या (Population)—संचयन तत्र मे भी प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की भाँति जन्तु-संख्या घटती-बढ़ती रहती है। वर्ष के विभिन्न भागो मे अलग-अलग प्रकार के कीट व अन्य जन्तुओ का बाहुल्य रहता है। जहाँ तक भण्डार मे कीटो की संख्या का प्रश्न है तो ये पहले से ही भण्डार मे किसी न किसी अवस्था में विद्यमान रहते हैं। लेकिन कभी-कभी खेतों से ही ग्रसन शुरू हो जाता है और कटाई के बाद के कीट अनाज के साथ भण्डार तक पहुँच जाते है। अनुकूलतम परिस्थितियो मे इनकी संख्या में वृद्धि अधिक होती है, संख्या बहुत अधिक बढ जाने पर तथा स्थान की कमी होने पर कई प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओ द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इसके अलावा सघनता (crowding) का कीटो के प्रजनन पर भी प्रभाव पड़ता है। सघनता के कारण आरम्भ मे तो प्रजनन दर बढती है लेकिन बाद मे सघनता और अधिक बढ जाने के कारण यह दर कम हो जाती है।

अनाज के दानों के बीच में पाये जाने वाले स्थान का भी संख्या-वृद्धि पर प्रभाव पडता है। ऐसा देखा गया है कि दानो के बीच स्थान कम होने पर साइटोफिलस की मादा अधिक अण्डे देती है। इसके विपरीत दाल के घुन—**कैलेसोब्रूकस** को अण्डे देने के लिए दानो के बीच अधिक स्थान की आवश्यकता होती है।

(2) जैव संघटक

प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की भाँति संचयन-तंत्र मे भी पाये जाने वाले

जैव संघटकों को मुख्य रूप मे दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(i) उत्पादक तथा (ii) उपभोक्ता।

(i) उत्पादक—अनाज स्वयं संचयन-तंत्र का प्रमुख संघटक है जो प्राकृतिक उत्पादकों की तरह ऊर्जा का स्थिरीकरण तो नही करता लेकिन उनके द्वारा स्थिर की गई ऊर्जा को संचित रखता है। इसीलिए सचयन तंत्र में इसे उत्पादक अनाज (producer grain) कहते हैं। यही से ऊर्जा का प्रवाह विभिन्न माध्यमो द्वारा समूचे तंत्र में होता है।

(ii) उपभोक्ता—कटाई से लेकर सचयन की अवधि में अनाज को खाने वाले जन्तुओं के अतिरिक्त अनेक प्रकार के जन्तु संचयन तन्त्र में पाए जाते है, जिन्हे उनके प्रकार्यात्मक स्तर के अनुसार विभिन्न श्रेणियों मे रखा जा सकता है। चूँकि जिन माध्यमों से होकर ऊर्जा का प्रवाह होता है उनका पोषण भी उसी ऊर्जा द्वारा होता है। इसीलिए इन माध्यमो को पोषी तल (trophic level) कहा जाता है। कार्य की दृष्टि से संचयन तंत्र मे निम्न पोषी तल निर्धारित किए जा सकते हैं।

(क) प्रथम पोषी तल—इस तल मे प्राथमिक उपभोक्ता आते हैं जो अपने पोषण के लिए सीधे अनाज पर ही निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए कीट—साइटोफिलस, राइजोपर्था, ट्रोगोडर्मा, कैलेसोब्रूकस, साइटोट्रोगा आदि, बरूथी—टायरोफैगस, एलियोरोबियस, ऐकेरस, पक्षी—गौरैया, कबूतर तथा स्तनधारी जैसे चूहे आदि इस तल के सघटक है। ये जन्तु अनाज को क्षतिग्रस्त कर देते हैं जिससे अन्य प्राथमिक उपभोक्ताओं जैसे—कवक—ऐस्परजिलिस व पेनीसीलियम तथा बैक्टीरिया का आक्रमण आसान हो जाता है।

(ख) द्वितीय पोषी तल—ऐसे जीव जो अपना भोजन प्रथम पोषी तल के जन्तुओं से प्राप्त करते हैं इस तल के संघटक हैं। ये द्वितीयक उपभोक्ता भी कहलाते हैं। कवक भक्षी कीट—लैथेटिकस व टाइफिया; कवक भक्षी बरूथी—टार्सोनीमस व टायरोफैगस; परोपजीवी कीट—ब्रैकन व सेफैलोनामिया तथा कीट भक्षी बरूथी—ग्लैटोसोसियस आदि इस तल मे आते हैं।

(ग) तृतीय पोषी तल—इस तल के प्रमुख सघटक अपमार्जक तथा अपघटक जीव हैं जो सूक्ष्म उपभोक्ता भी कहलाते हैं। ये अपना पोषण उत्पादकों तथा प्रथम व द्वितीय पोषी तल उपभोक्ताओं के मृत शरीर से करते हैं। इनके अलावा कीट, बरूथी तथा चूहों द्वारा उत्सर्जित पदार्थों पर निर्भर रहने वाले कुछ सूक्ष्म-जीवाणु भी इसी तल मे आते हैं। ये जन्तु कुछ ऊर्जा अपने पोषण के काम मे ले लेते हैं तथा कुछ को पुनः उपयोग के लिए पर्यावरण मे छोड़ देते है। लेकिन सचयन तन्त्र में इस प्रकार छोड़ी गई ऊर्जा का स्थिरीकरण करने वाले उत्पादक नही पाए जाते। यही कारण है कि सचयन तन्त्र में ऊर्जा का नवीनीकरण नही हो पाता और इसमें स्थायित्व नहीं आ पाता।

आहार शृंखला

उत्पादक अनाज के अन्दर संचित ऊर्जा सबसे पहले प्रथम पोषी तल के उपभोक्ता तक पहुँचती है जो सीधे अनाज को ही खाता है। यहाँ से ऊर्जा प्रथम पोषी तल पर आश्रित जीवों अर्थात् द्वितीय पोषी तल उपभोक्ताओं तक पहुँचती है, तथा वहाँ से तृतीय पोषी तल उपभोक्ताओं (अपमार्जकों तथा अपघटकों) तक पहुँचती है। ये जीव द्वितीय पोषी तल के जीवों द्वारा उत्सर्जित पदार्थों तथा उनके मृत
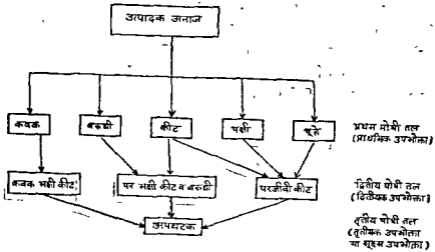
चित्र 4. संचयन तंत्र में आहार शृंखला
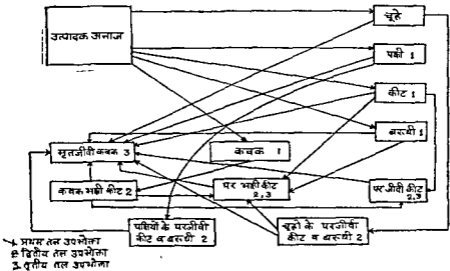
चित्र 5. संचयन तंत्र में आहार-जाल

शरीर से अपना भोजन प्राप्त करते हैं, इस प्रकार विभिन्न पोषी तलों से होकर ऊर्जा के प्रवाह के दौरान ऊर्जा की क्षति भी होती है। चूंकि ऊर्जा-प्रवाह की यह समूची क्रिया एक श्रृंखला के रूप में होती है अतः इसे आहार-श्रृंखला कहते हैं (चित्र 4)।

आहार जाल

कभी-कभी तंत्र मे ऊर्जा-प्रवाह आहार-श्रृंखला की भांति सरल रूप से किसी विशेष दिशा में न होकर कुछ उलझा हुआ सा होता है, इसमें कई पोषीतल एक-दूसरे से भोजन प्राप्त करते हैं और इस प्रकार ऊर्जा का पारस्परिक आदान-प्रदान होता है। यह पूरी क्रिया एक जाल के रूप में प्रदर्शित की जा सकती है अतः इसे आहार जाल कहा जाता है (चित्र 5)।

2
संचित अनाज के नाशक जीव

(क) अपृष्ठवंशी, (ख) पृष्ठवंशी, (ग) कवक

नाशक जीव (Pest)—अंग्रेजी के पेस्ट (Pest)/नाशक जीव शब्द का उद्‌भव लैटिन भाषा के शब्द पेस्टिस (Pestis) से हुआ है जिसका अर्थ प्लेग (Plague)/महामारी होता है। कोई भी जीव जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानव-कल्याण में बाधा उपस्थित करता है और वह बाधा यदि आर्थिक महत्त्व की हो तो उसे नाशक जीव (Pest) कहते हैं। इन जीवों की मानव उपयोग की सामग्री में उपस्थिति को ग्रसन (Infestation) कहते हैं।

(क) अपृष्ठवंशी

गण—अकेराइना (Acarina)

(1) आटा की बरुथी—अकैरस साइरो (Acarus Sirol)

कुल—टायरोग्लायफिडी (Tyroglyphidae)
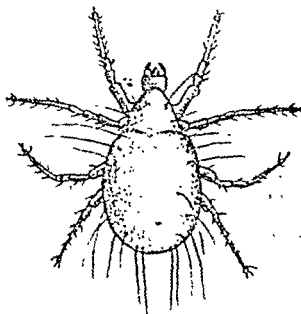
चित्र 6. आटा की बरुथी - अकैरस साइरो

अकेरस साइरो (चित्र 6) का प्राचीन नाम टायरोग्लायफस फैरिनी (Tyroglyphus Farinae) है। यह संचित आटे का एक प्रमुख नाशक जन्तु है। कतिपय वैज्ञानिकों का मत है कि इसका आक्रमण केवल टूटे हुए अनाज व आटे पर होता है जबकि कुछ अन्य के अनुसार यह साबुत दानों को भी क्षति पहुँचाती है। यह भ्रूण भाग को खाकर नष्ट कर देती है। इसके खाने से तो प्राय: कम क्षति होती है, लेकिन इसके निर्मोक, मल-मूत्र तथा इससे निकलने वाली विशेष प्रकार की गन्ध से क्षति अधिक होती है। अधिक ग्रसन होने पर अनाज व आटा मानव उपभोग के अयोग्य हो जाता है। ग्रसित आटा गन्दे-भूरे रंग का हो जाता है। रंग तथा गन्ध के कारण अनाज पीसने तथा आटा पकाने के अयोग्य हो जाता है।

यह बरुथी आकार में सूक्ष्म, मोती जैसी सफेद होती है, पैरों का रंग गुलाबी तथा कुछ-कुछ कत्थई होता है।

जीवन-इतिहास—सोलोमन (1962) के अनुसार इसके मौलिक निवास स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है, सम्भवत: यह मूल रूप से पक्षियों के घोसलों में रहती थी। यह मिट्टी के अन्दर भी पायी जाती है तथा विघटनशील कार्बनिक पदार्थों पर जीवन-निर्वाह करती है। वुडरोफ (1953) ने बताया है कि यह बरुथी घर तथा भण्डार में बनाये गये चिड़ियों के घोसलों में रहती है तथा वहीं से यह अनाज तक पहुँचती है। इसके अलावा चूहे तथा गिलहरी भी इसको फैलाने में सहायक होते हैं। गोदाम व भण्डार में काम करने वाले व्यक्तियों के जूतों व कपड़ों के साथ भी यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकती है।

मादा बरुथी 20 से 30 अण्डे देती है जो खाद्य पदार्थ पर बिखरे रहते हैं। अण्डे 0.12 मि० मी० लम्बे तथा अण्डाकार होते हैं। ऊष्मायन काल 3–4 दिन होता है। अण्डों से फूटकर छ: पैरों वाला डिम्भक निकलता है जो लगभग 3 दिन तक तीव्र गति से खाने व वृद्धि करने के बाद 1–2 दिन तक निष्क्रिय होकर चुपचाप पड़ा रहता है। पूर्ण जीवन-चक्र अनुकूल परिस्थिति अर्थात् 64–70°F ताप पर 17 दिन तथा जाड़े में 50–60°F ताप पर 28 दिन में पूरा होता है। इसके प्रजनन के लिए अनुकूलतम ताप 25°C तथा आपेक्षिक आर्द्रता 95 प्रतिशत है। इस परिस्थिति में एक सप्ताह में इसकी संख्या में सात गुनी वृद्धि हो सकती है।

इसकी संख्या वृद्धि पर नियन्त्रण रखने वाली प्रमुख शत्रु परभक्षी बरुथी—केलेटस एरुडिटस (Cheyletus eruditus) है।

अकेरस साइरो के साथ पाई जाने वाली तथा आटे को क्षति पहुँचाने वाली एक अन्य बरुथी ग्लायसीफेगस डेस्ट्रक्टर (Glycyphagus destructor) है।

टायरोग्लाइफिडी कुल की भण्डार में क्षति पहुँचाने वाली अन्य बरुथियाँ निम्न हैं—

(i) टायरोफेगस लोंगिअर (Tyrophagus Longior Germ)—जो अनाज तथा चारे के लिए सुखाकर रखी गई घास को क्षति पहुँचाती है।

(ii) **टायरोफेगस केसी** (Tyrophagus Casei Oud.)—इसे पनीर की बरूथी (Cheese mite) भी कहते है।

(iii) **कार्पोग्लाइफस लैक्टिस** (Carpoglyphus Lactis L.) तथा **कार्पोग्लाफस पैसुलेरम** (C. Passularum Hering)—ये सचित किये गये सूखे फलो, अजीर, सेब आदि को हानि पहुँचाती है।

संचित पदार्थों को हानि पहुँचाने के अलावा इस कुल की बरूथियाँ भण्डार/गोदाम मे काम करने वाले व्यक्तियो के हाथ व बाँह पर खुजली पैदा कर देती है। इस खुजली को ग्रोसर्स इच (Grocer's itch) कहते हैं। लेकिन यह खुजली बरूथी द्वारा उत्पन्न पामा (Scabies) तथा खाज (Mange) जैसी बीमारियो से बिल्कुल भिन्न है। घरो मे इनकी उपस्थिति से निवासियो को मानसिक अशान्ति भी रहती है।

(iv) **राइजोग्लाइफस एकाइनोपस** (Rhizoglyphus echinopus) Funouze and Robin)—यह हायमिन्थ, डहेलिया, लिली तथा प्याज के शल्क कन्द को खाकर क्षति पहुँचाती है। यह क्षति 15–20 प्रतिशत तक हो सकती है।

इनके अलावा एरिओफिडी (Eriophidae) कुल की बरूथी खेत मे ही प्याज, लहसुन तथा ट्यूलिप आदि के शल्क कन्दो पर लग जाती है तथा उनके साथ भण्डार मे भी जाकर क्षति पहुँचाती है।

गण—लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)

1. ऐन्गोमोइस अनाज का पतंगा/अनाज तथा आटे का पतंगा
   साइटोट्रोगा सेरेलेला (Sitotroga Cerealella Olivier) (चित्र 7)
   कुल—गेलेकिडी (Gelechiidae)

चित्र 7 एंगोमोइस अनाज का पतंगा-साइटोट्रोगा सेरेलेला

यह कीट समस्त भारतवर्ष में पाया जाता है। सर्वप्रथम यह सम्भवत: फ्रांस के ऐन्गोमोइस प्रान्त में पाया गया, इसीलिए इसे ऐन्गोमोइस अनाज का पतंगा कहा जाता है।

यह पतंगा हल्के कत्थई पीले-हरे रंग अथवा तृण-पीत रंग का; पंख के आर-पार 10–12 मि० मी० चौड़ा होता है। इसके पंख पतले, नुकीले, किनारे पर लम्बे बालों की झालरयुक्त होते हैं।

इससे गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार आदि की क्षति पहुँचती है। क्षति केवल इल्ली ही पहुँचाती है। यह दानों के अन्दर घुस कर संचित पदार्थ को खा जाती है। प्राय: 30–50 प्रतिशत पदार्थ ही खाया जाता है, लेकिन कभी-कभी पूरा दाना भी खोखला हो जाता है। ग्रसन अधिक होने पर दाने बहुत क्षीण व हल्के हो जाते हैं तथा उनमें से एक प्रकार की दुर्गन्ध निकलती है। इसका आक्रमण भण्डार के अतिरिक्त खेत में भी होता है। मादा उड़ने में सक्षम होने के कारण गोदाम से उड़कर खेत में पके हुए दानों में अण्डे दे देती है। कटाई से लेकर गहाई तक ये अण्डे ऐसे ही पड़े रहते हैं। अनाज को भण्डार में ले जाने के बाद अण्डा तीव्र गति से वृद्धि करके इल्ली में परिवर्तित हो जाता है। यदि पतंगा खेत अथवा खलिहान में पैदा होता है तो यह खलिहान या भूसे के ढेरों में प्रजनन करता है। इसका प्रकोप प्राय. संचित अनाज की ऊपरी सतह पर अधिक होता है। इससे ग्रसित गोदाम/धान्यागार खोलने पर पतंगे उड़ते हुए दिखाई देते हैं।

जीवन-इतिहास—इसका प्रजनन-काल अप्रैल से अक्टूबर है। निर्गमन के 24 घण्टे के अन्दर मादा सम्भोग करके अण्डे देना आरम्भ कर देती है। अण्डे अकेले अथवा झुण्ड में दानों के ऊपर या उनके आस-पास दिये जाते हैं। आरम्भ में अण्डे सफेद होते हैं तथा बाद में धीरे-धीरे लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। एक मादा एक सप्ताह में लगभग 150 अण्डे दे सकती है। अण्डों का ऊष्मायन काल 4–8 दिन होता है। अण्डे से निकलने के तुरन्त बाद इल्ली दाने के अन्दर घुस जाती है तथा उसमें संचित पदार्थ को खाने लगती है। इल्ली लगभग 3 सप्ताह में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेती है। कोशित में परिवर्तित होने से पहले यह एक रेशमी कोश/कोकून बनाती है। इसके अन्दर लाल, कत्थई रंग का कोशित रहता है, कोशित काल 6–12 दिन होता है। दाने की ऊपरी पर्त को एक ओर हटाकर उसमें से पतंगे का निर्गमन होता है। अनुकूल परिस्थिति में जीवन-चक्र लगभग 30 दिन में पूरा हो जाता है। जाड़े के दिनों में यह कीट इल्ली अवस्था में शीत समाधि में रहता है तथा गर्मी का आरम्भ होते ही कोशित में परिवर्तित हो जाता है और फिर प्रौढ़ पतंगा बाहर निकलता है। पतंगे का जीवन काल 5–10 दिन होता है।

2. धान का पतंगा—कोरसायरा सेफैलोनिका (Corcyra Cephalonica Stainton) (चित्र 8)

कुल—गैलेरिडी (Galleriidae)

यह पूरे भारतवर्ष में धान का महत्वपूर्ण नाशककीट है। इसकी इल्ली धान के अलावा चना, ज्वार, मक्का, मूँगफली, बिनौला, बिस्कुट, सूजी, मैदा, खली, मेवा,

आटा, चाकलेट आदि को भी क्षति पहुँचाती है। भण्डार मे इसका प्रसन एन्गोमोइस पतंगे के साथ होता है।

चित्र 8 धान का पतंगा - कोरसायरा सेफैलोनिक
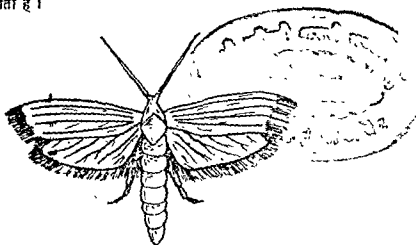
क्षति केवल इल्ली ही करती है, अधिक प्रपन होने पर पूरे भण्डार में जाले ही जाले दिखाई देते हैं। अनाज से दुर्गन्ध आने लगती है तथा यह मानव उपभोग के अयोग्य हो जाता है।

जीवन इतिहास—यह कीट मार्च से नवम्बर तक सक्रिय रहता है तथा जाड़े के दिनों में इल्ली अवस्था में शीत समाधि मे रहता है। फरवरी में गर्मी के प्रारम्भ होते ही इल्ली कोशित मे परिवर्तित हो जाती है तथा मार्च में पतंगे का निर्गमन होता है। यह रात्रि को अधिक सक्रिय रहता है। निर्गमन के बाद सम्भोग करके मादा 1–2 दिन में अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है, अण्डे 3–5 के बैच में बोरी के ऊपर दाने पर अथवा गोदाम में अन्य किसी स्थान पर दिये जा सकते हैं। एक मादा अपने लगभग 7 दिन के जीवन-काल में 60 से 150 अण्डे देती है। अण्डे से 4–7 दिन में इल्ली निकल कर खाना शुरू कर देती है। प्रारंभ में यह टूटे हुए दानो को पसन्द करती है लेकिन बड़ी होने पर साबुत दानों को भी क्षति पहुँचाती है।

इल्ली अपने रहने के लिए रेशमी जाला बनाती है जिसमें अनाज के दानो को मिलाकर व उनके बीच मे छिपकर क्षति पहुँचाती है। इसीलिए इसे आसानी से देखा नहीं जा सकता है। इल्ली के 5 निर्मोक रूप होते हैं तथा यह 21–41 दिन मे पूर्ण विकसित हो जाती है। इसके बाद रेशमी कोश बनाकर उसमें कोशित मे परिवर्तित हो जाती है। कोशित-काल 9–14 दिन तथा पतंगे का जीवन-काल लगभग 7 दिन का होता है। इसका जीवन-चक्र 33–52 दिन में पूरा हो जाता है। एक वर्ष में इसकी 6 पीढ़ियाँ होती हैं।

3. बादाम/अंजीर का पतंगा—काड्रा (एफेस्टिया) कॉटेला (Cadra) (Ephestia) Cautella Walker

कुल—फाइसिटिडी (Phycitidae)

यह कीट प्रायः सूखे फल/मेवे जैसे—बादाम, अंजीर, काजू, किशमिश, पिस्ता, सुखाये हुए सेब, खजूर, इमली के बीज आदि पर पाया जाता है। इनके अतिरिक्त इसे लाख, जमा हुआ दूध, आम के पापड़, लहसुन, मक्का, ज्वार, सोयाबीन, गेहूँ, चावल आदि को भी क्षति पहुँचाते पाया गया है। वैसे तो यह पूरे भारतवर्ष में पाया जाता है, लेकिन दक्षिण भारत में इसका प्रसन अधिक होता है। पतंगा भूरे रंग का होता है तथा इसके पंख के बाहरी किनारे पर अनुप्रस्थ धारियाँ होती हैं। पंख का फैलाव लगभग 12 मि० मी० होता है।

जीवन-इतिहास—मादा पतंगा भण्डार की दीवार, दरार, अनाज रखने के साधन, दानों आदि पर अण्डे दे देती है। एक मादा लगभग 250 अण्डे दे सकती है, अण्डों का ऊष्मायन काल 3–4 दिन होता है। अण्डे से निकलने पर इल्ली अपनी लार द्वारा अपने चारो ओर एक रेशमी जाला बना लेती है, जिसके अन्दर बैठकर खाती रहती है। यह 40–50 दिन में पूर्ण विकसित हो जाती है। यह हल्के सफेद गुलाबी रंग की लगभग 1.5 से० मी० लम्बी होती है। इल्ली रेशमी कोश के अन्दर कोशित में परिवर्तित हो जाती है। कोशित काल लगभग 12 दिन का होता है। जीवन चक्र लगभग 2 माह में पूरा होता है। एक वर्ष में इसकी 5–6 पीढ़ियाँ हो सकती हैं।

4. गुलाबी मक्का कृमि—पाइरोडेरसेस रिलेई (Pyroderces rileyi Wals)

यह कीट सर्वप्रथम अमेरिका में संचित मक्का के नाशक कीट के रूप में सन् 1855 में पाया गया। इसके पतंगे के आगे वाले पंखों पर पीले-लाल तथा भूरे-काले रंग के धब्बे होते हैं। पीछे वाले पंख पतले तथा किनारे पर झालरदार होते हैं।

मादा अलग-अलग छोटे, सफेद अण्डे देती है, पूर्ण विकसित इल्ली गुलाबी रंग की तथा लगभग 8 मि० मी० लम्बी होती है।

इस कीट का आक्रमण खेत में ही मक्का के पकने पर प्रारम्भ हो जाता है तथा वहीं से भण्डार तक पहुँच जाता है। इसकी इल्ली जाला बनाकर दानों में अथवा उनके बीच के खाली स्थानों में रहती है। इन जालों से ही इसकी उपस्थिति का पता लग जाता है।

5. मैदा का सूँडदार पतंगा—पाइरेलिस फैरिनेलिस (Pyralis farinalis L)

यह पतंगा सभी जगह मिलता है, लेकिन इसके लिए नम व गन्दा स्थान, जहाँ मोटा अनाज अथवा टूटे हुए दाने पड़े रहते हैं, अधिक अनुकूल होता है, आकार में यह प्लोडिया के पतंगे से कुछ अधिक बड़ा होता है तथा इसके पंख का फैलाव 18.7 मि० मी० होता है। रंग हल्का कत्थई होता है, आगे वाले पंख कत्थई अथवा

गहरे चाकलेटी रंग के होते हैं। पंख के बीच में सफेद लहरदार लकीर होती है जो हल्के व गहरे रंग के भाग को अलग करती है। इसका एक विशिष्ट गुण है कि यह अपने उदर के अन्तिम भाग को टेढ़ा कर लेता है तथा पंखों को उदर के ऊपर समेट लेता है। इसकी इल्ली धान्यागार की सतह के दानों को जाले मे लपेट कर उसी मे पड़ी रहती है। इल्ली का रंग सफेद लेकिन सिर और शरीर के प्रथम खण्ड का रंग काला होता है। पूर्ण विकसित इल्ली लगभग 12.5 मि० मी० लम्बी होती है। खाद्यान्न के अलावा यह सरसो, धनिया, साबूदाना, जीरा तथा अन्य वनस्पति पदार्थों में जाला बनाकर रहती है। इनके अतिरिक्त भूसा अथवा चोकर में भी यह अपना जीवन पूरा कर सकती है।

जीवन-इतिहास—मादा पतंगा अपने करीब एक सप्ताह के जीवन-काल मे 200–400 अण्डे देती है। अण्डे से निकल कर इल्ली ठोस खाद्य पदार्थ मे सुरंग बनाती है जो एक ओर से खुली रहती है। उसी में रहकर यह खाती रहती है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेने पर इल्ली सुरंग से बाहर निकल जाती है तथा अपनी लार से रेशमी तारों का कोश बनाकर उसी में कोशित रूप मे परिवर्तित हो जाती है। कोशित गहरे कत्थई रंग का 5–7 मि०मी० लम्बा होता है, परिस्थिति के अनुसार कोशित-काल 5–30 दिन हो सकता है। इसका जीवन-चक्र 6–8 सप्ताह मे पूरा हो जाता है। इसकी दो अन्य जातियाँ पाइरैलिस पिक्टलिस तथा पा० मैनीहारलिस भी भारतवर्ष मे विभिन्न खाद्य पदार्थों को क्षति पहुँचाती पाई जाती हैं।

6. भारतीय मैदा का पतंगा (Indian Meal Moth)

प्लोडिया इन्टरपंक्टेला (Plodia Interpunctella Flubn) (चित्र 9)

कुल—फाइसिटिडी (Phycitidae)

इस पतंगे का शरीर हल्के धूसर रंग का तथा पंख का फैलाव 12 मे 18 मि. मी.
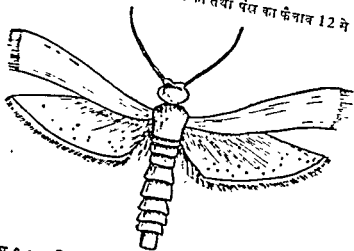
चित्र 9 भारतीय मैदा का पतंगा- प्लोडिया इंटरपंस्टेला

होता है। क्षति केवल इल्ली ही करती है, जिसके मुखांग काटने व चबाने वाले होते हैं, इसकी इल्ली को सर्वप्रथम अमेरिका में भारत से आयात किये गये मक्का के आटे को खाते हुए पाया गया सम्भवतः इसीलिए इसे इण्डियन मील माथ/भारतीय मैदा का पतगा नाम दिया गया। यह केवल दानों के नर्म भाग को ही क्षति पहुँचाती है।

जीवन-इतिहास—इसका प्रजनन मुख्य रूप से मक्का के भुट्टों में होता है। खेत के आस-पास रखे हुए अनाज को भी इससे क्षति होती है, खेत व खलिहान से उडकर यह गोदाम तक पहुँचता है।

मादा प्रायः खुरदरी सतह पर अण्डे देती है, अण्डे अधिकतर रात्रि मे दिये जाते हैं। एक मादा अपने जीवन-काल मे लगभग 350 अण्डे दे सकती है। अण्डो का ऊष्मायन-काल 2–17 दिन होता है। अण्डे से निकली हुई इल्ली लगभग 2 मि.मी. लम्बी होती है तथा निकलने के बाद ही भोजन करना प्रारम्भ कर देती है। इसका ग्रसन सतह पर अधिक होता है। यह अनाज को अपनी लार से बने रेशमी तार के जालों मे उलझा देती है तथा इल्ली अपने भाग को दानो की सतह से सटाकर उसके अन्दर छेद करके क्षति पहुँचाती है। इसके द्वारा बनाये गये जाले भण्डारों मे लटके हुए देखे जा सकते है। बोरो की सीवन पर इसके जाल अधिक पाये जाते हैं। पूर्ण विकसित इल्ली लगभग 8.4 मि० मी० लम्बी होती है जिसका रग खाद्य-पदार्थ के रंग से मिलता-जुलता होता है, पर अधिकतर पीला अथवा सफेद होता है। इल्ली कोश बनाकर उसी के अन्दर कोशित मे बदल जाती है। कोशित-काल परिस्थिति के अनुसार 4 से 33 दिन तक होता है। इसका जीवन-चक्र लगभग एक माह मे पूरा होता है, शीतकाल मे इल्ली सुषुप्तावस्था मे रह सकती है।

7. भूमध्यसागरीय आटा का पतंगा (Mediterranean Flour Moth)
एफेस्टिया कुहनिएला (Ephestia Kuhniella Zell.)
कुल—फाइसिटिडी (Phycitidae)

यह संचित अनाज का विश्वव्यापी कीट है। यह आकार, रहन-सहन तथा जीवन-इतिहास मे बिल्कुल बादाम के पतंगा—कोड़ा (एफेस्टिया) कॅटेला जैसा ही होता है। इनमे अत्यन्त सूक्ष्म रचनात्मक भिन्नताएँ होती हैं।

8. भेड़िया पतंगा—नैमापोगन ग्रैनेला (Namapogan Granella L)

यह कीट बहुत व्यापक नही है तथा संचित अनाज को इससे क्षति भी कोई विशेष नहीं होती है। यह पतंगा ऐन्गोमोइस अनाज के पतंगे से मिलता-जुलता है होता। इसका रंग कुछ गन्दा पीला-सफेद अथवा मक्खन जैसा होता है। इसके पंख पर हल्के कत्थई रंग की चित्रकारी होती है। इसका आक्रमण भी खेत से ही प्रारम्भ हो जाता है।

9. आलू का पतंगा (Potato Tubermoth)
नोरिमोशिमा (थोरीमिया) ओपरकुलेला (Gnorimoschema (Phthorimaea) Operculella Zeller) (चित्र 10)
कुल—गेलेकिडी (Gelechiidae)
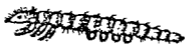
चित्र 10 आलू का पतंगा-नोरिमोशिमा आपरकुलेला

यह गोदाम में संचित आलू का प्रमुख नाशक कीट है, परन्तु इसका आक्रमण खेत में भी होता है। खेत में यह उन आलुओं को क्षति पहुँचाता है जो जमीन के ऊपर निकले रहते हैं। ये आलुओं को क्षतिग्रस्त कर देते हैं, जिससे उन पर बीमारी का संक्रमण अधिक होता है। इस कीट को आलू, बैंगन, टमाटर, तम्बाकू तथा सोलेनेसी कुल के अन्य कई पौधों की पत्तियों में खान बनाकर भी खाते हुए पाया गया है। क्षति केवल इल्ली द्वारा ही पहुँचाई गई होती है।

पतंगा आकार में छोटा, पतला, रंग में गुलाबी-सफेद अथवा हरापन लिये हुए होता है। इसका सिर लम्बा, कत्थई रंग का होता है तथा आगे निकला रहता है। इसके आगे वाले पख नुकीले, सलेटी, मिश्रित कत्थई रंग के तथा गहरे कत्थई रंग के धब्बों से युक्त होते है। इन पर चमकीले पीले रंग की धारियाँ होती हैं। पिछले पंखों के किनारे झालरदार होते हैं, पखो का फैलाव लगभग 16 मि० मी० होता है।

जीवन-इतिहास—मादा पतंगा खेत में मिट्टी से बाहर निकले हुए आलू पर अथवा पत्ती के नीचे की ओर अण्डे देती है। अण्डे पीले-सलेटी रंग के होते हैं तथा अकेले-अकेले अथवा झुण्ड मे दिये जा सकते हैं। एक मादा लगभग 80 अण्डे दे सकती है। अण्डे प्राय आलू की आँख पर दिये जाते हैं। खेत से ही ग्रसन भण्डार तक पहुँचता है। अण्डो का ऊष्मायन काल 3–5 दिन होता है। अण्डे से निकलने के बाद इल्ली पत्ती, तना, अथवा आलू के कन्द के अन्दर छेद करके खाती है। यह 10–15 दिन मे पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेती है। इस समय यह हरे-सलेटी रंग की, पतली, कत्थई रंग के सिर वाली, पीठ पर पीले चमकदार रंग की धारी से युक्त 7–14 मि०मी० लम्बी होती है, यह बाद मे सलेटी रंग के रेशमी कोश मे कोशित बन जाती है। ग्रसित आलू के अन्दर, आलू पर ढकी हुई रेत अथवा अन्य किसी सुरक्षित स्थान पर कोशित बनता है। कोशित-काल 7–10 दिन होता है तथा जीवन-चक्र 25–35 दिन मे पूरा हो जाता है। एक वर्ष में इसकी 13 पीढ़ियाँ हो सकती है। ग्रीष्म ऋतु इसके लिए सर्वाधिक अनुकूल होती है। इसी समय इसका ग्रसन अधिक होना है, इल्ली तथा कोशित दोनों ही शीत-समाधि मे जा सकते हैं।

गण—कोलिओप्टेरा (Coleoptera)

1. खपरा भृंग—ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम (Trogoderma Granarium (Khapra Arrow) Everts) (चित्र 11)

कुल—डर्मेस्टिडी (Dermestidae)

यह समस्त भारतवर्ष मे पाया जाता है, उत्तरी भारत मे गेहूँ को इससे सर्वाधिक क्षति होती है। गेहूँ के अतिरिक्त यह जौ, बाजरा, ज्वार, मक्का, धान, चना, पोस्ता, दालें, पिस्ता तथा अन्य सूखे फलो को भी क्षति पहुँचाता है। भारतीय मूल का यह कीट इंग्लैण्ड, जर्मनी, इजराइल तथा संयुक्त राज्य अमेरिका मे भी फैल गया है। क्षति केवल ग्रब/डिम्भक द्वारा ही होती है।

प्रौढ भृंग छोटा, गहरे कत्थई रग का लगभग 2–3 मि०मी० लम्बा होता है, नर आकार मे छोटा, मादा के आकार का लगभग आधा तथा अधिक गहरे रंग का होता है। इसके ऐण्टीना का सिरा अधिक पतला व लम्बा होता है। पूर्ण विकसित ग्रब कत्थई रंग का, शरीर पर पीले-कत्थई रंग की अनुप्रस्थ धारियों तथा लम्बे कड़े बालो से युक्त लगभग 4 मि० मी० लम्बा होता है। शरीर के नीचे का भाग पीले रंग का होता है।
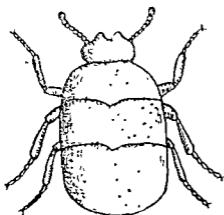
चित्र 11 खपरा भृंग - ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम

इसके द्वारा सर्वाधिक क्षति जुलाई से अक्टूबर तक होती है, जब मौसम गर्म व नम रहता है। अब दानों मे भ्रूण अथवा अन्य किसी कमजोर भाग को काटकर प्रवेश करता है। *अधिक ग्रसन होने पर दाने भूसी के रूप मे परिवर्तित हो जाते है।* इसका आक्रमण अनाज की लगभग 50 से० मी० ऊपरी सतह तक ही सीमित रहता है। ग्रसित अनाज पर यदि एक खाली बोरी रख दी जाये तो सारे अब उस पर एकत्रित हो जाते हैं।

जीवन-इतिहास—निर्गमन के 2–3 दिन बाद मादा सम्भोग करती है तथा इसके 1–3 दिन बाद अण्डे देना आरम्भ करती है। अण्डे सफेद, बेलनाकार एक सिरे पर गोल तथा दूसरे सिरे पर नुकीले होते हैं। अण्डे अकेले अथवा 2–5 के झुण्ड मे दिये जाते है। एक मादा अपने लगभग 7 दिन के जीवन-काल में 13–85 अण्डे दे सकती है। अण्डो का ऊष्मायन काल गर्मी मे 3–5 दिन तथा जाड़े में 6–10 दिन होता है। नर-डिम्भक 20–30 दिन तथा मादा 20–40 दिन मे विकसित होता है। दानो के बीच अब के अन्तिम निर्मोक मे कोशित बनता है। कोशित काल 4–6 दिन होता है। एक वर्ष मे इसकी 4–5 पीढ़ियां होती है, भृंग उड़ने मे सक्षम होता है। इसका प्रजनन काल अप्रैल से अक्टूबर है। नवम्बर से मार्च तक यह अब अवस्था में भण्डार की दीवार, फर्श, दरारो अथवा अन्य सुरक्षित स्थानो पर शीत-समाधि में रहता है।

2. धान का घुन—साइटोफिलस (कलेन्ड्रा) ओराइजी (Sitophilus (Calandra) Oryzae Linnaeus) (चित्र 12)

कुल—कुर्कुलिओनिडी (Curculionidae)

यह धान्य (Cereals) का प्रमुख शत्रु कीट है, तथा विश्व के सभी भागों में पाया जाता है। गर्म व नम तथा मध्यम जलवायु वाले क्षेत्रों में इसका ग्रसन अधिक
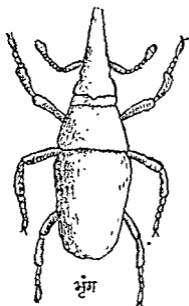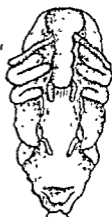
चित्र 12 धान का घुन - साइटोफिलस ओराइजी

होता है, खेत से ही ग्रसन प्रारम्भ हो जाता है। इसे मुख्य रूप से मक्का तथा गेहूँ के खेत मे क्षति पहुँचाते पाया गया है (खरे आदि 1970)। भारत मे इससे मक्का को सर्वाधिक क्षति होती है।

प्रौढ़ भृंग गहरे भूरे/कत्थई रंग का, छोटा लगभग 3 मि० मी० लम्बा कीट होता है। इसके मुखांग काटने व चबाने वाले होते हैं तथा सिर के आगे सूँड सी निकली हुई रचना के अन्त मे स्थित होते हैं। पीठ पर चार हल्के-लाल अथवा पीले धब्बे होते हैं। नर तथा मादा मे कोई विशेष अन्तर नही होता है, परन्तु मादा की सूँड नर से अधिक लम्बी व नीचे की ओर झुकी हुई होती है। नर की सूँड मादा से अधिक चौड़ी होती है। इसमे उड़ने की क्षमता अधिक होती है तथा यह उड़कर लगभग 2.5 कि०मी० दूर स्थित खेतो मे क्षति पहुँचाते पाया गया है। इसका ग्रसन पुराने ग्रसित अनाज तथा भण्डार से नये अनाज तक पहुँचता है। क्षति प्रौढ़ तथा ग्रब दोनों ही द्वारा पहुँचाई जाती है पर ग्रब द्वारा क्षति अधिक होती है।

जीवन-इतिहास—मादा कीट अनाज के दानो मे छोटा-सा छेद करके उसमे अण्डे देती है। पुन: उस छेद को जिलेटिन जैसे तरल पदार्थ से बन्द कर देती है। अण्डे अत्यन्त छोटे तथा सफेद होते हैं। एक मादा अपने 10–30 दिन के जीवनकाल मे लगभग 250 अण्डे दे सकती है। परिस्थिति के अनुसार अण्डों का ऊष्मायन-काल 4–9 दिन होता है। ग्रब का शरीर सफेद व मासल होता है। सिर कत्थई रंग का

तथा जबड़े बहुत शक्तिशाली होते है । ग्रब अनाज के दानों के अन्दर छेद करके संचित पदार्थ को खाता है। चूंकि ग्रब स्वभाव से स्वजातिभक्षी (Cannibalistic) होते हैं। अतः अधिकतर एक दाने मे एक ही ग्रब पाया जाता है, लेकिन बड़े दानो में दो ग्रब भी पाये जा सकते हैं। ग्रब के चार निर्मोक रूप होते है तथा इसका वृद्धि-काल 25–35 दिन होता है। पूर्ण विकसित ग्रब दाने से बाहर निकल आता है, कोशित अवस्था मे परिवर्तित होने से पहले यह दो-तीन दिन तक पूर्व-कोशित (Pre-pupa) अवस्था मे पड़ा रहता है। कोशित काल 3–6 दिन होता है लेकिन प्रतिकूल परिस्थिति में यह 20 दिन भी हो सकता है। इसका जीवन-चक्र लगभग 6 सप्ताह में पूरा होता है, प्रौढ़ 14 सप्ताह तक जीवित रह सकता है। यह वर्ष भर सक्रिय रहता है तथा एक वर्ष में इसकी 5–6 पीढ़ियाँ होती हैं।

प्राय: यह मान्यता है कि यह कीट सम्पूर्ण/साबुत दाने के अतिरिक्त अन्य कहीं प्रजनन नहीं कर सकता है। लेकिन जमे हुए आटे तथा आटे से बने ठोस पदार्थों मे भी यह प्रजनन करते पाया गया है।

3. छोटा अनाज वेधक (Lesser Grain borer) राइजोपर्था डोमीनिका (Rhizopertha dominica F.) (चित्र 13)

कुल—बॉस्ट्रिचिडी (Bostrichidae)

यह भारतीय मूल का कीट माना जाता है, परन्तु उत्तरी अमेरिका तथा अर्जेण्टिना का भी यह एक प्रमुख शत्रु-कीट है। इसके प्रौढ़ तथा ग्रब दोनों ही अपने काटने व चबाने वाले मुखांगो से क्षति पहुँचाते है। विभिन्न प्रकार के धान्य जैसे—गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का के अलावा ग्रब लकड़ी, चमड़ा तथा सूखे मेवे आदि मे भी छेद करके हानि पहुँचाता है।

यह भृंग बेलनाकार, गहरे कत्थई अथवा काले रंग का 3.2 मि०मी० लम्बा होता है इसके शरीर की ऊपरी सतह खुरदरी होती है। अपने मजबूत जबड़ो से यह लकड़ी जैसे कठोर पदार्थ में भी छेद कर सकता है। उड़ने में भी यह सक्षम होता है। प्रौढ़ भण्डार से उड़कर खेत व खलिहान तक पहुँच जाता है तथा ग्रसन वहीं से प्रारम्भ हो जाता है। इससे क्षतिग्रस्त दाने बिल्कुल खोखले हो जाते है।

जीवन-इतिहास—मादा भृंग अनाज के दानों अथवा अन्य स्थानों पर भी अण्डे दे सकती है। अण्डे प्रारम्भ में सफेद चमकदार होते हैं तथा बाद मे नारंगी रंग में बदल जाते हैं। एक मादा अपने जीवन-काल में 300–500 अण्डे दे सकती है। अण्डों का ऊष्मायन-काल सामान्य परिस्थिति में 5–6 दिन होता है। अण्डो से निकलकर ग्रब दाने में छेद करने मे समर्थ होता है तथा छेद करके अन्दर प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार दाने में संचित पदार्थ को खा जाता है। सम्पूर्ण/साबुत दाने के अलावा यह दूसरे भृंगों द्वारा क्षतिग्रस्त दानों तथा आटे पर भी जीवन व्यतीत कर
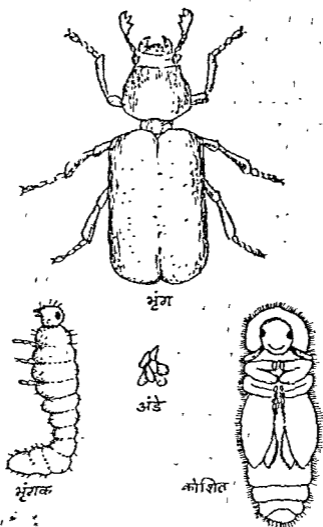
चित्र 13. छोटा अनाज बेधक- राइज़ोपर्था डोमीनिका

सकता है। सामान्यतः एक दाने में एक ही ग्रब होता है पर मक्का जैसे बड़े दाने में एक से अधिक ग्रब भी हो सकते है।

ग्रब प्रायः 4 बार निर्मोक बदलकर लगभग 25-40 दिन में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विकसित ग्रब मटमैले रंग का तथा इसका सिर कत्थई रंग का होता है। इसके शरीर पर बहुत छोटे-छोटे बाल होते हैं। यह दानों के अन्दर टेढ़ा, मुड़ा हुआ पड़ा रहता है। कोशित बनने से पहले एक-दो दिन तक यह पूर्व कोशित अवस्थ

मे पड़ा रहता है। कोशित-काल लगभग एक सप्ताह होता है। जीवन-चक्र लगभग दो माह मे पूरा होता है। वर्ष मे इसकी कई पीढ़ियाँ होती हैं।

यह कीट वर्ष भर सक्रिय रहता है और मई-जून से अगस्त-सितम्बर तक अधिकतम क्षति पहुँचाता है। जिन दानों पर कवक का आक्रमण हो जाता है उन पर न तो इसका आक्रमण होता है और न ही यह प्रजनन करता है।

4. कोपराबग—नेक्रोबिया रुफीपेस (Necrobia rufipes De Geer)

कुल—क्लेरिडी (Cleridae)

इस भृंग के ग्रब संरक्षित मांस, मछली, पनीर, सूखे अण्डे, खोपरा, सूखे फल, सूखे हुए कीट आदि को खाकर नष्ट कर देते हैं। मांस के अन्दर विशेषकर वसायुक्त भाग में प्रवेश कर ये क्षति पहुँचाते हैं। प्रौढ भृंग लगभग 3–6 मि० मी० लम्बा, चमकीले, हरे-नीले रंग का होता है। उड़ने मे सक्षम होते हुए भी प्रायः तेज गति से चलता है।

जीवन इतिहास—मादा भृंग खाद्य-पदार्थो पर झुण्ड मे अण्डे देती है। गर्म, अनुकूल मौसम में 4–6 दिन मे अण्डे फूट जाते हैं। ग्रब आकार में लम्बा, सिर की ओर अधिक पतला तथा बैंगनी रंग का होता है। इसके शरीर पर बाल होते है। मुखांग काटने व चबाने वाले होते हैं। ग्रब 3–5 सप्ताह मे विकसित हो जाता है। पूर्ण विकसित ग्रब कोशित बनने से पहले किसी दरार अथवा गड्ढे में आकर अपने ऊपर रेशमी कोश बनाकर कोशित मे परिवर्तित हो जाता है। कोशित-काल लगभग एक सप्ताह होता है।

5. लाल आटा भृंग—ट्राइबोलियम कैस्टेनियम (Tribolium Castaneum Herbst) (चित्र 14)

कुल—टेनीब्रियोनिडी (Tenebrionidae)

यह गेहूँ के आटे का सबसे प्रमुख विश्वव्यापी कीट है। इसके अतिरिक्त यह सूखे फल, दाल, कार्नफ्लेक्स आदि को भी खाता है। क्षति प्रौढ तथा ग्रब दोनो ही द्वारा होती है। प्रौढ भृंग लाल-कत्थई रंग का लगभग 3.5 मि० मी० लम्बा तथा 1 2 मि०मी० चौड़ा होता है। पूर्ण विकसित ग्रब 6 मि० मी० लम्बा तथा लाल-मिश्रित पीले रंग का होता है। इसका सिर, पैर तथा उदर का अन्तिम खण्ड गहरे कत्थई रंग का होता है। ग्रब खाद्य-पदार्थ में छिपे रहते है। प्रौढ उड़ने में सक्षम होता है, लेकिन यह भी प्रायः आटे मे छिपा रहता है, इसकी एक अन्य जाति—ट्राइबोलियम कॉन्फ्यूजम (Tribolium Confusum) भी प्रायः आटे मे पाई जाती है।

इससे सर्वाधिक क्षति बरसात के दिनो मे होती है जब मौसम गरम व नम होता है। यह साबुत दानो को क्षति नहीं पहुँचा सकता है, लेकिन आटा, आटे से बनी वस्तुओं तथा अन्य कीटो द्वारा क्षतिग्रस्त अनाज को इससे भारी क्षति होती है। प्रसन
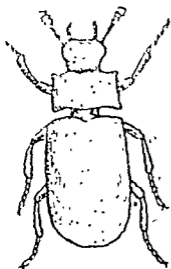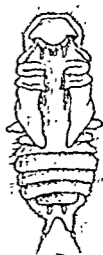
चित्र 14 लाल आटा भृंग - ट्राइबोलियम कैस्टेनियम

अधिक होने पर आटा राख जैसे रंग का हो जाता है तथा इससे तीखी गन्ध आती है। ऐसा आटा मानव उपयोग के अयोग्य हो जाता है।

जीवन-इतिहास—यह कीट अप्रैल-अक्टूबर तक प्रजनन करता है तथा शीत-काल प्रौढ़ के रूप में व्यतीत करता है। सक्रिय मौसम में मादा निर्गमन के बाद सम्भोग करके 1–2 दिन बाद अण्डे देना शुरू करती है। अण्डे सफेद पारदर्शी तथा बेलनाकार होते हैं। अण्डे आटा, भूसी तथा अन्य खाद्य-पदार्थों में दिये जाते हैं। एक मादा 300–900 अण्डे दे सकती है। अण्डों का ऊष्मायन-काल 4–10 दिन होता है। ग्रब के 6–7 निर्मोक रूप होते हैं तथा यह 22–25 दिन में पूर्ण विकसित हो जाता है। आटे में ही यह कोशित अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। कोशित के ऊपर बाल होते हैं तथा इसका रंग कुछ-कुछ पीला होता है। कोशित-काल 5–9 दिन होता है, अनुकूल परिस्थिति में जीवन-चक्र 26–30 दिन में पूरा हो जाता है। लेकिन प्रतिकूल ताप तथा भोजन के अभाव में विकास-काल लम्बा हो जाता है।

6. दाल का भृंग—कैलोसोब्रूकस मैकुलेटस (Callosobruchus Maculatus) (चित्र 15)

कुल—ब्रुकिडी (Bruchidae)

यह समस्त विश्व में पाया जाने वाला चना, मूँग, मोठ, मटर, चवलों, अरहर आदि दालों का अत्यन्त हानिकारक कीट है। इनके अतिरिक्त यह बिनौला, ज्वार तथा मक्का पर भी पाया जाता है। प्रौढ़ भृंग अण्डाकार 3–4 मि.मी. लम्बा,
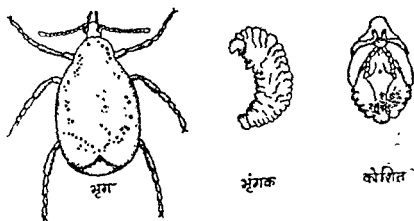
चित्र 15. दाल का भृंग - कैलेसोब्रुकस मैकुलेटस

चाकलेट अथवा लाल-कत्थई रंग का होता है। इसके वक्ष के ऊपर बीच में एक जोड़ी सफेद लम्बे निशान होते हैं। विकसित ग्रब 6–7 मि.मी. लम्बा, मक्खन जैसे रंग का होता है, सिर का रंग हल्का भूरा होता है। सर्वाधिक क्षति अप्रैल से सितम्बर तक होती है तथा यह ग्रब द्वारा ही पहुँचाई जाती है। अक्टूबर-नवम्बर मे क्षति कम हो जाती है। इससे ग्रसित दाने खोखले तथा मानव-उपभोग के अयोग्य हो जाते हैं। ऐसे दानों को प्रायः व्यापारी पीस कर आटा बना लेते हैं, जिससे विशेष प्रकार की अवांछित गंध आती है।

जीवन-इतिहास—यह कीट मार्च से नवम्बर तक सक्रिय रहता है तथा शीत-काल में ग्रब अवस्था मे शीत समाधि में रहता है। मार्च मे निर्गमन के तुरन्त बाद मादा सम्भोग करके एक दिन बाद अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है। अण्डे सफेद गोल शल्काकार तथा दानों के ऊपर चिपके रहते हैं (चित्र 16)। एक दाने पर प्रायः 2–3 अण्डे होते हैं। एक मादा 30–100 अण्डे दे सकती है। अण्डों का ऊष्मायन-काल 7–15 दिन होता है। अडे से निकलने के बाद ग्रब दाने में छेद करके अन्दर चला जाता है तथा उसी के अन्दर खाता और विकसित होता रहता है। ग्रब 10–40 दिन में पूर्ण विकसित हो जाता है। शीत समाधि के दौरान विकास काल 100 दिन से अधिक हो सकता है। पूर्ण विकसित ग्रब दाने की सतह की ओर आ जाता है और वहीं पर सफेद, अण्डाकार कोशित मे परिवर्तित हो जाता है। कोशित-काल 4–28 दिन हो सकता है, प्रौढ भृंग गोल निर्गमन छिद्र द्वारा बाहर निकलता है। ऐसे दाने आसानी से पहच ने जा सकते हैं। प्रौढ का जीवन-काल 5–20 दिन का होता है। एक वर्ष में इसकी सात-आठ अतिव्यापन पीढ़ियाँ होती हैं। इसकी कई अन्य जातियाँ भी पाई जाती हैं जिनके नाम अग्रांकित हैं :—
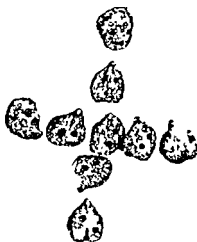
चित्र 16. कैलेसोब्रूकस द्वारा
क्षतिग्रस्त चने के दाने
तथा उनके ऊपर चिपके दाने

1. कॅलेसोब्रूकस (ब्रूकस) काइनेन्सिस (Callosobruchus (Bruchus) chinensis)
2. कॅ० क्वाड्रीमैकुलेटस (C. (B.) quadrimaculatus)
3. कॅ० ऐनेलिस (C. (B.) analis)
4. कॅ० एल्बोकॅलोसस (C. (B.) albocallosus)
5. कॅ० फेजिओलाइ (C. (B.) phaseoli)
6. कॅ० एमारजिनेटस (C. (B.) emarginatus)
7. कॅ० पाइसोरम (C. (B.) piscrum)
8. कॅ० ऐफिनिस (C. (B.) affinis)

इनमे से केवल पाँच जातियो के कॅलेसोब्रूकस भारत मे पाये जाते हैं। उनमे से नीचे लिखी हुई ही दाल के खेतो मे पाई जाती हैं:—

1. कॅ० काइनेन्सिस
2. कॅ० मैकुलेटस
3. कॅ० एनेलिस
4. कॅ० लेन्टिस

7. आरी दंत भृंग—ओराइजोफिलस सुरिनामेन्सिस (Oryzaephilus Surinamensis) (चित्र 17)

कुल—सिलवेनिडी (Silvanidae)

इस भृंग के वक्ष के दोनो ओर आरी के समान छः दांत बाहर निकले रहते हैं। सम्भवतः इसीलिए इसे आरी दंत भृंग कहा जाता है। यह कीट संचित अनाज, अनाज से बनी वस्तुएँ जैसे आटा, मैदा, बिस्कुट आदि; मेवा—काजू, किशमिश,

छुहारा आदि तथा हल्दी जैसे मसालो को भी क्षति पहुँच ता है। प्रायः घुन जैसे अन्य कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त सामग्री मे इसका ग्रसन अधिक होता है लेकिन कभी-कभी अधिक आर्द्रता वाले साबुत अनाज की भी भारी क्षति करता है। प्रौढ़ भृंग का शरीर चपटा रहता है जिससे इसे किसी भी स्थान मे प्रवेश करने में सुविधा रहती है।

चित्र 17 आरी दंत भृंग औराइजीफिलस सुरिनामेन्सिस

जीवन-इतिहास—मादा भृंग खाद्य पदार्थ के ऊपर अथवा दरारों मे अण्डे देती है। अण्डे छोटे, पतले और सफेद होते है।[+] सामान्य परिस्थिति मे अण्डों का ऊष्मायन काल 3–5 दिन तथा शीतकाल मे 15 दिन हो सकता है। अण्डों से निकलने के बाद ग्रब स्वतन्त्रता पूर्वक इधर-उधर घूमते तथा भोजन करते हैं। इसके लिए अनुकूलतम ताप लगभग 29°C तथा नमी 10 5 प्रतिशत है। अधिक ताप (38°C) व कम नमी (8 8 प्रतिशत) पर ग्रब नहीं विकसित हो पाते। परिस्थिति के अनुसार ग्रब का विकासकाल दो सप्ताह से 7 या 10 सप्ताह हो सकता है। पूर्ण विकसित ग्रब, खाद्य पदार्थों के टुकड़ो को आपस में जोड़कर एक कोश बनाता है। जिसमें यह पूर्व कोशित अवस्था में एक से चार सप्ताह तक पड़ा रहता है। कोशित काल लगभग एक सप्ताह होता है, अण्डे से प्रौढ़ कीट तक जीवन चक्र लगभग चार सप्ताह मे पूरा होता है। लेकिन प्रतिकूल परिस्थिति मे इसके विकास में 300 से भी अधिक दिन लग सकते हैं।

[+]एक मादा लगभग 375 अण्डे दे सकती है।

भृंग बहुत सक्रिय होता है तथा इसका जीवन काल 5 से 10 माह होता है लेकिन कभी-कभी यह 3 वर्ष तक भी जीवित रह सकता है। ये कीट प्रायः अनाज भण्डारों के नमीदार स्थानों पर एकत्रित होते हैं। फफूँदीदार स्थानों में प्रौढ़ भृंग अधिक मिलते हैं।

8. भण्डार का घुन—साइटोफिलस ग्रेनेरियस (Sitophilus granarius L.)
प्राचीन नाम—कैलेन्ड्रा ग्रेनेरिया (Calandra granaria)

कुल— कुकुंलियोनिडी (Curculionidae)

यह कीट समस्त विश्व में विशेषकर शीतोष्ण जलवायु मे पाया जाता है। यह चावल के घुन से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। प्रौढ़ भृंग में उड़ने की क्षमता नही होती है। इसका जीवन काल भी चावल के घुन—साइटोफिलस ओराइजी से अधिक होता है। इसकी मादा भी सा० ओराइजी की भाँति ही अण्डे देती है। ग्रब दानों के अन्दर संचित खाद्य पदार्थ को खाकर क्षति पहुँचाता है। इसका विकास काल 6 सप्ताह से 12 सप्ताह तक हो सकता है। यह पूर्व कोशित अवस्था मे लगभग एक से चार दिन तक रह सकता है, कोशित काल 4 दिन होता है।

इसकी एक अन्य जाति—साइटोफिलस जीमेइस (sitophilus zeamais Motsch) है जिसे सामान्यत. मक्का का घुन के नाम से जाना जाता है। यह कीट भण्डार से उडकर खेत मे भी क्षति पहुँचाता है। ऐसा पाया गया है कि खोल के अन्दर ढके हुए भुट्टो मे इसका ग्रसन कम हो जाता है लेकिन यदि खोल ढीला हो गया हो अथवा उतार दिया गया हो तो इसका ग्रसन बहुत होता है। यह लगभग 400 मीटर तक उड़कर खेत मे क्षति पहुँचा सकता है। शीतकाल मे यह प्रायः गोदाम से बाहर शीत-निष्क्रियता मे रहता है। एक वर्ष में इसकी दो/तीन पीढियाँ हो सकती हैं।

9. कहवा घुन—ऐरोसेरस फैसिकुलेटस (Araecerus fasiculatus Deg)

यह कीट मुख्यतः भारतवर्ष मे पाया जाता है लेकिन यह भी सर्वव्यापी हो गया है। यह कॉफी के बीजों व फलियो मे प्रजनन करता है तथा उन्हे क्षति पहुँचाता है। क्षति बीज मे संचित पदार्थ को खाकर पहुँचायी जाती है। कॉफी के अलावा यह संचित अनाज के दानो को भी क्षति पहुँचाता है। घुन का शरीर सुगठित, भूरे रंग का होता है तथा इसकी लम्बाई लगभग 4·8 मि मी. होती है।

10. कँडले भृंग—टैनोब्रायडेस मॉरिटैनिकस (Tenebroides mauritanicus L) (चित्र 18)

कुल—ट्रोगोस्टिडी (Trogostidae)

यह विश्वव्यापी कीट है, कुछ वैज्ञानिको की मान्यता है कि इसका मूल स्थान अमेरिका है। यह भण्डारो मे प्रायः पाया जाता है। प्रौढ भृंग काला, आयताकार

और चपटा तथा लगभग 2 मि.मी. लम्बा होता है। इसका सिर शरीर से अलग दिखाई देता है। इसके ग्रब मांसल तथा लगभग 5-7 मि.मी. लम्बे होते हैं। ये प्रायः अनाज भण्डारों की लकड़ी में बिल बनाते हैं और एक लम्बे समय तक उसी में रहते हैं। जब भण्डार में नया अनाज भरा जाता है तभी ये बाहर निकलते हैं।

चित्र 18. कैडले भृंग - टेनीब्रायडेस मॉरिटैनिकस
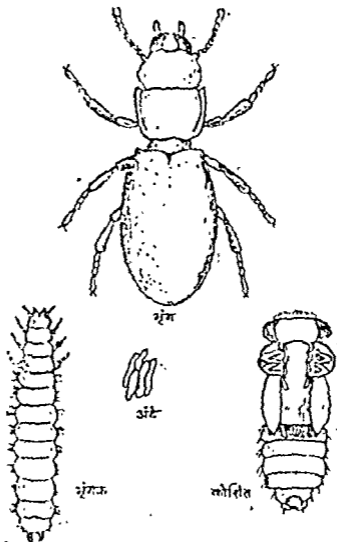
रेशमी कपड़ों को काटना इनकी सामान्य आदत है, परन्तु ये मैदा में भी बहुत क्षति करते हैं। गेहूँ, जई आदि अनाजों में भी इनका प्रकोप होता है। प्रायः दानों के जर्म भाग को ही यह खाता है। यदि क्षतिग्रस्त दाने इसे मिल जाएँ तो उनको बहुत खाता है।

गरम व नम स्थानों में यह कीट बहुत पाया जाता है, प्रायः खाली दीखने वाले लकड़ी के कोष्ठों मे भारी संख्या में छिपे रहते हैं तथा अनाज रखने के तुरन्त बाद ही उस पर आक्रमण कर देते हैं। प्रौढ़ का जीवन काल लगभग एक से दो वर्ष होता है।

जीवन-इतिहास—मादा कीट का प्रजनन काल ग्रीष्म ऋतु है। यह खाद्य पदार्थ के ऊपर अथवा दरारो में अण्डे देती है। अण्डे 10 से 40 के झुण्ड मे दिए जाते हैं। एक मादा एक हजार तक अण्डे दे सकती है। अण्डे सफेद, लम्बे तथा सिगार के आकार के होते हैं। इनका उष्मायन काल 7–14 दिन होता है। ग्रब सफेद व मांसल होता है तथा उसका सिर काला होता है। ग्रब का विकासकाल 10 से 20 माह होता है। लेकिन प्रतिकूल परिस्थिति व भोजन के अभाव मे विकास में 3–4 वर्ष लग सकते हैं। पूर्ण विकसित ग्रब छेद किए हुए दानो अथवा एक दूसरे से उलझे हुए दानों के बीच कोशित मे परिवर्तित हो जाता है। कोशितकाल 10–12 दिन होता है। ग्रब तथा प्रौढ़ कीट दोनो ही भोजन के अभाव मे लकड़ी के नीचे अथवा किसी अन्य स्थान पर छिपकर बहुत लम्बी अवधि तक जीवित रह सकते हैं। अनुकूल परिस्थिति मे जीवन-चक्र 60–70 दिन मे पूरा हो जाता है।

11. लम्बे सिर वाला आटा भृंग—लैथेटिकस ओराइजी (Latheticus oryzae Waterhouse)

कुल—टेनीब्रियोनिडी (Tenebrionidae)

यह समस्त विश्व में पाया जाने वाला कीट भारत के सूखे व समशीतोष्ण भागों में अधिक पाया जाता है। प्रौढ़ भृंग व ग्रब का आकार लाल आटा भृंग—ट्राइबोलियम से बहुत मिलता-जुलता है। भृंग चपटा, पीले या गुलाबी रंग का तथा लगभग 3 2 मि.मी लम्बा होता है, यह भण्डार मे अनाज तथा अनाज उत्पादो मे प्रजनन करता है। ग्रब का रंग मक्खनिया तथा सिर व पैर कत्थई रग के होते है। इसके शरीर पर छोटे-छोटे हल्के रंग के बाल होते है। कोशित दानो के बीच अथवा आटे मे बनता है। कोशित बेलनाकार होता है तथा इसका शरीर खण्डों मे विभाजित नही होता है। सामान्य ताप व आर्द्रता पर इसका जीवन-चक्र 25–39 दिन मे पूरा हो जाता है।

12. पीला मैदा कृमि—टेनीब्रियो मॉलीटर (Tenebrio molitor Linn) (चित्र 19)

कुल—टेनीब्रियोनिडी (Tenebrionidae)

यह विश्वव्यापी कीट है तथा मुख्यत. आटा, मैदा तथा टूटे हुए अनाज के दानो का शत्रु कीट है। इनके अलावा यह आटा की चक्की के नीचे एकत्रित आटा व दाना मिश्रित कूड़ा करकट, बोरियो व कोष्ठो के नीचे एकत्रित कूड़ा आदि मे भी पाया जाता है। यह कीट प्रायः गर्म व नम स्थान मे पाया जाता है। इसे नमक, सोडा,

राव, पिसी हुई काली मिर्च में भी पाया गया है। इनकी उपस्थिति गोदाम/भण्डार मे स्वच्छता की कमी की द्योतक है।

प्रौढ़ भृंग काला तथा 1·25 से.मी. लम्बा होता है। इसके पंख अच्छी तरह विकसित होते हैं। इनको देखकर कैंडले भृंग—टेनीब्रियो मॉरिटैनिकस का भ्रम हो सकता है। इन दोनों में बहुत अधिक समानता होती है।
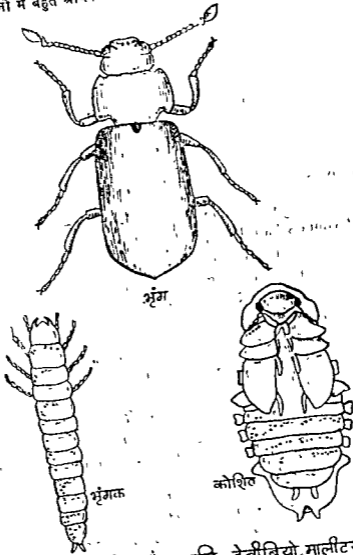
चित्र 19. पीला मैदा कृमि- टेनीब्रियो मालीटर.

जीवन-इतिहास—मादा भृंग अकेले अथवा झुंड में खाद्य-पदार्थ पर या इधर-उधर अण्डे देती है। अण्डे देने की क्रिया लगभग तीन सप्ताह तक चलती रहती

है। एक मादा लगभग 275 अण्डे दे सकती है। अण्डा गोल, अर्धपारदर्शी, दूध की तरह सफेद व चमकदार होता है, अण्डो का ऊष्मायन काल 7 से 10 दिन होता है। अण्डों से निकले हुए ग्रब पीलापन लिए भूरे रंग के होते हैं। पूर्ण विकसित ग्रब लगभग 2·5 से. मी. लम्बा होता है, ग्रब का विकासकाल लगभग 6 माह होता है, लेकिन उचित तापक्रम तथा भोजन के अभाव में यह एक वर्ष तक इसी अवस्था में पड़ा रह सकता है। पूर्ण विकसित ग्रब खाद्य पदार्थ से बाहर निकलकर कुछ दिन तक इधर-उधर घूमते रहते हैं तथा बाद मे कोशित मे परिवर्तित हो जाते हैं। कोशित पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है। इसकी लम्बाई 15 मि.मी. तथा चौड़ाई लगभग 8·4 मि.मी. होती है। कोशित काल 6 से 18 दिन होता है, इसके बाद प्रौढ़ भृंग निकल आता है, अण्डे से प्रौढ़ कीट बनने मे लगभग 300 दिन लग सकते हैं।

यह कीट शीतकाल मे कृमि-अवस्था मे अपना जीवन व्यतीत करता है। प्रौढ़ भृंग ग्रीष्म तथा बसन्त ऋतु के आरम्भ में ही दिखाई देते हैं, प्रौढ़ का जीवन-काल 12 से 30 माह तक हो सकता है।

13. कूबड़दार भृंग (Hump beetle)—गिबियम साइलायडेस (Gibbium Psylloides Fab. P) (चित्र 20)

कुल—टाइनिडी (Ptinidae)

यह विश्व मे सभी जगह पाया जाने वाला कीट है, प्रौढ़ भृंग ही क्षति करता है। यह मुख्य रूप से खली, गेहूँ, सूखी रोटी, बिनोला, काली-मिर्च, रबर तथा सूखे कीटों को खाता है। इनके अतिरिक्त यह चने व जौ की भूसी में भी पाया गया है।

प्रौढ़ भृंग का शरीर अण्डाकार होता है तथा पीछे का भाग उठा हुआ होता है जिसके कारण इसे कूबड़दार भृंग कहते हैं। यह 2·1 से 3·00 मि.मी. लम्बा होता है। इसकी पीठ पर लाल रंग के चमकदार पक्षवर्म होते है जिनमे छोटे-छोटे सुनहरी बाल होते है। इसके एण्टीना पर भी ऐसे ही बाल होते हैं, इसके पैर मकड़ी जैसे होते हैं तथा सिर नीचे की ओर झुका रहता है। इसके कारण यह आसानी से पहचाना जा सकता है, भृंग उड़ने में सक्षम नही होता तथा धीरे-धीरे चलता है। *यह चिकने स्थान पर नही चल सकता।*

इसी जाति से मिलता-जुलता तथा इसी कुल का एक अन्य कीट आस्ट्रेलियाई कूबड़दार भृंग—*टाइनस टेक्टस (Ptinus tectus Boieldieu) है जो आटा, अनाज की भूसी आदि मे पाया जाता है। भारतवर्ष मे भी यह कीट पाया जाता है।*

14. सिगरेट भृंग—लेसिओडर्मा सेरीकार्न (Lasioderma Serricorne) (चित्र 21)

कुल—एनोबाइडी (Anobiidae)

इसका वर्णन गृहवासी नाशक जीवो के अन्तर्गत किया गया है। सबसे पहले
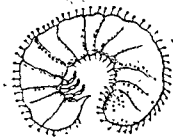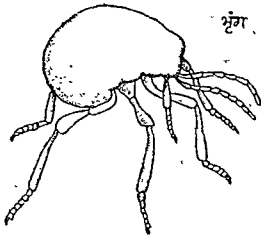
चित्र 20 कूबड़दार भृंग- गिनियम साइलायडेस
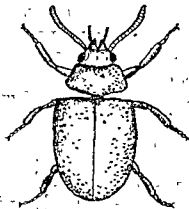
चित्र 21. सिगरेट भृंग-
लेसिओडर्मा सैरीकार्नें

इसे तम्बाकू तथा उससे बने उत्पादों पर पाया गया। यह खाद्यान्न से बनी वस्तुओं तथा सूखे जन्तु उत्पादों, कीटों आदि पर भी अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। इनके अलावा इसे विभिन्न मसालों, अदरख, हल्दी, सरसों आदि पर भी पाया गया है।

15. औषधि भण्डार भृंग—स्टीगोबियम पेनीसियम (Stegobium paniceum L.)

कुल—एनोबाइडी (Anobiidae)

यह एक सर्वाहारी कीट है जो काली-मिर्च, औषधियाँ, भण्डारित अनाज, मसाले, चमड़े, लकड़ी, कपड़े आदि को खाता है, यह प्रायः औषधालयों मे पाया जाता है। इसका प्रजनन अनाज तथा अनाज से बनी वस्तुओं में होता है।

यह प्रौढ़ सिगरेट भृंग से बहुत मिलता-जुलता होता है। इसकी लम्बाई 2·5 से 3·5 मि.मी. होती है तथा इसके पंख धारीदार होते हैं। शरीर का आकार बेलनाकार, सुदृढ़ तथा उत्तल होता है। शरीर कोमल रेशमी लोमावरण से युक्त हल्के भूरे रंग का होता है। यह आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष महत्वपूर्ण नही है।

16. चपटा अनाज भृंग (Flat grain beetle)—लिमोफ्लोएस माइनूटस (Laemophloeus minutus oliv)

कुल—कुकुजिडी (Cucujidae)

यह संचित अनाज का सबसे छोटा कीट है तथा भण्डार मे सर्वाधिक सामान्य रूप से पाए जाने वाले कीटों में से एक है। इसका रंग कुछ लाल तथा भूरा होता है। शरीर छोटा, चपटा आयताकार लगभग 4·3 मि. मी. लम्बा होता है। यह मूलतः भण्डार का कीट नहीं है। सम्पूर्ण/साबूत दानों को यह क्षति नही पहुँचा सकता, दूसरे कीटों द्वारा खाए गए अनाज, टूटे दानों, आटा, मैदा आदि पर अपना जीवन व्यतीत करता है। प्रायः यह कूड़ा-करकट तथा नमीदार स्थानों पर पाया जाता है तथा सड़ी-गली वस्तुओं को खाता है। ग्रब मरे हुए कीटों को खाता है।

जीवन-इतिहास—मादा भृंग अनाज के ऊपर, दरारों तथा आटेदार पदार्थों में अण्डे देती है। ग्रब सिगार के आकार का, मक्खनिया रंग का लगभग 0 7 मि.मी. लम्बा होता है। पूर्ण विकसित ग्रब के शरीर का अन्तिम खण्ड लाल-भूरे रंग का होता है। ग्रब जिलेटिन जैसे पदार्थ का कोश बनाता है तथा उसी मे कोशित मे परिवर्तित हो जाता है। इस कोश के चारों ओर आटा, मैदा तथा अन्य खाद्य पदार्थों के टुकडे चिपके हुए पाए जा सकते हैं। अनुकूल परिस्थिति मे इसका जीवन-चक्र लगभग 6 सप्ताह मे पूरा हो जाता है।

17. काला कवक भृंग (Black fungus beetle)-ऐल्फीटोबियस लीविगेटस (Alphitobius Leevigatus Fab.)

कुल—टेनीब्रियोनिडी (Tenebrionidae)

यह गर्म तथा नम प्रदेशों मे वर्ष भर पाया जाता है। भण्डार के गन्दे तथा नम

स्थान में यह बहुत मिलता है। यदि अनाज मे आर्द्रता अधिक हो और उसकी देखभाल अच्छी तरह न हो तो उसमें इस कीट का ग्रसन हो जाता है। ऐसी मान्यता है कि यह कीट सम्पूर्ण/साबुत अनाज पर जीवन-निर्वाह नही कर सकता। यह भृंग बम्बई, बगाल, असम, ट्रावनकोर, कोचीन, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागो के गन्दे भण्डारो मे बहुत मिलता है। प्रौढ़ भृंग का रग काला और लाल-सा होता है। इसके वक्ष पर छोटे-छोटे गर्त होते हैं तथा इसकी लम्बाई 4.8 से 6.3 मि० मी० तक होती है। इसकी एक अन्य जाति **ऐल्फीटोबियस पाइसियस** (A. Piceous Oliv) भी भण्डार के गन्दे व नम भागों मे पाई जाती है। जिन भण्डारों मे चटाई बिछाकर बोरियां रखी जाती हैं उनमे चटाई के नीचे यह कीट पाया जाता है।

18. मक्का रस भृंग—**कार्पोफाइलस डिमिडिएटस** (**Carpophilus dimidiatus F.**)

कुल—निटिडुलिडी (Nitidulidae)

इसे मक्का का कीट भी कहते है तथा इसे धान्यागारों व आटे की चक्कियो मे उड़ता हुआ पाया जा सकता है। यह प्राय. सडने-गलने वाले फल व पत्तियो पर अपना जीवन निर्वाह करता है। कभी-कभी यह चावल, मक्का तथा मैदा के कोष्ठो मे भी पाया जाता है। इससे हानि तो कम होती है, पर इसकी उपस्थिति एक कण्टक है।

प्रौढ़ भृंग छोटा, गहरे-भूरे रंग का होता है, पंख का रग कुछ हल्का होता है। इसकी लम्बाई 2.5 से 3.00 मि० मी० होती है। उदर के पीछे का हिस्सा खुला रहता है। इसमें उडने की विशेष क्षमता होती है। यह फेंके हुए धान्यो पर भी जीवन निर्वाह कर सकता है। भारत मे इसकी एक अन्य जाति **कार्पोफाइलस पिलोसिलस** (**C. Pilosillus Motsch**) भी पायी गयी है।

19. बड़ा अनाज बेधक—**प्रोस्टेफेनस ट्रंकेटस** (**Prostephanus truncatus Horn**)

कुल—बॉस्ट्रीचिडी (Bostrichidae)

यह छोटा अनाज बेधक **राइजोपर्था** से मिलता-जुलता कीट है, इसकी आदत उससे बहुत मिलती है, लेकिन आकार बड़ा लगभग 4.3 मि०मी० लम्बा होता है। इसका शरीर चिकना होता है, आर्थिक दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नही है।

20. चौकोर-ग्रीवा अनाज भृंग (Square necked grain beetle)

कैथेर्टस क्वाड्रीकोलिस (**Cathartus quadricollis Guer**)

कुल—सिलवेनिडी (Silvanidae)

यह आरी दन्त भृंग से मिलता-जुलता कीट है। इसका शरीर चपटा, आयताकार, चमकीला लाल और 2.5 मि०मी० लम्बा होता है। इसका वक्ष वर्गाकार होता है तथा आरी दन्त भृंग की तरह दाँते नही होते। यह संयुक्त राज्य अमेरिका मे प्राय: खेत मे फली खाता हुआ पाया जाता है तथा मक्का को भी क्षति पहुँचाता है।

21. विजातीय अनाज भृंग—अहासवेरस ऐडवेना (Ahasverus adrena Walth)

कुल—सिल्वेनिडी (Silvanidae)

यह कॅयेर्टस से मिलता-जुलता, भूरा, लाल मुँह का कीट है। यह उड़ने में सक्षम होता है तथा नम व कवक लगे दानों को क्षति पहुँचाता है। सम्पूर्ण, साबुत व सूखे अनाज को यह क्षति नहीं पहुँचा सकता है। यह मूँगफली के दाने खाने तथा उस पर अपना जीवन व्यतीत करने में सफल हो सकता है।

22. स्यामी अनाज भृंग (Siamese grain beetle)—लैफोकैटेरस पुसिलस (Laphocaterus Pusillus Klug)

यह कीट स्याम से आई वस्तुओं में पाया गया इसीलिए इसे स्यामी अनाज भृंग कहते हैं, यह चपटा, लाल, भूरे रंग का लगभग 3.1 मि०मी० लम्बा होता है। इसे चावल व अन्य धान्य तथा भूसे में पाया गया है। यह अधिकतर संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में पाया जाता है।

23. इमली का भृंग (Tamarind beetle)—कैर्योबोरस (कॅरिडान) गोनेग्रा (Caryoborus (caridon) gonagra)

कुल—ब्रुचिडी (Bruchidae)

यह दाल के भृंग कैलेसोब्रूकस से मिलता-जुलता कीट है। इसका ग्रसन इमली के संचित बीजों पर होता है। इसके ग्रब बीज के अन्दर प्रवेश कर खाद्य-पदार्थ को खाकर खोखला कर देते हैं। आर्थिक दृष्टि से यह कोई विशेष महत्वपूर्ण नाशी कीट नहीं है।

24. शकरकन्द का घुन (Sweet potato weevil)

साइलस फॉर्मिकेरियस (Cylas formicarius)

कुल—कुर्कुलिओनिडी/ऐपिओनिडी (Curculionidae/Apionidae)

यह विश्वव्यापी कीट है। प्रौढ भृंग का शरीर पतला, चींटी के आकार का लगभग 5–6 मि० मी० लम्बा होता है। इसकी लम्बी सूँड आगे निकली रहती है। इसके शरीर का रंग चमकीला काले रंग का होता है। वक्ष तथा पैर लाल मिश्रित भूरे रंग के होते हैं।

यह खेत तथा भण्डार दोनों स्थानों पर क्षति पहुँचाता है। इसके ग्रब कन्द के अन्दर छेद करके खाते हैं तथा प्रौढ घुन पत्ती, टहनी तथा कन्द को क्षति पहुँचाता है। इसका ग्रसन होने पर पौधे मर सकते हैं। खेत से ही कन्द के अन्दर छिपे हुए ग्रब भण्डार तक चले जाते हैं जहाँ प्रौढ के रूप में निकलते हैं।

मादा घुन कन्द के अन्दर गड्ढे बनाकर अण्डे देती है। अण्डे अलग-अलग दिये जाते हैं। एक मादा लगभग 200 अण्डे दे सकती है। अण्डों से 3–5 दिन में सफेद रंग के कत्थई सिर वाले ग्रब निकलते हैं। इनके पैर नहीं होते। ग्रब टहनी अथवा

कन्द के अन्दर कोशित में परिवर्तित हो जाते है। कोशित काल 7 से 10 दिन होता है तथा जीवन-चक्र 4–5 सप्ताह में पूरा हो जाता है।

(ख) पृष्ठवंशी

वर्ग—एवीज (Aves)

गण—पैसेरीफार्मेस (Passeriformes)

कुल—प्लोसिडी (Ploceidae)

1. घरेलू चिड़िया—पैसर डोमेस्टिकस (Passer domesticus Linn)

यह छोटे आकार का लगभग 15 से०मी० लम्बा पक्षी है जो भारत के समस्त मैदानी तथा पहाड़ी भागो में बहुतायत से पाया जाता है। मादा के शरीर का रंग पीठ की ओर हल्का भूरा तथा पेट की ओर सफेद होता है। नर के पीठ का रग मादा से अपेक्षाकृत अधिक गहरा होता है। पख पर काली धारियाँ तथा गले व वक्ष पर काले धब्बे होते हैं। गाल उभरे हुए तथा सफेद होते है।

शहर तथा गाँव मे सभी लोग इसकी चूँ-चूँ की आवाज से परिचित होगे। यह घरो के झरोखें, दीवार मे विद्यमान गड्ढे, कच्ची छतें व छप्परो मे अपना घोसला बनाती है। घोसला बनाने के लिए यह तृण, पख आदि का उपयोग करती है। इसके अण्डे हरापन लिये सफेद होते हैं जिन पर कत्थई रग के धब्बे होते है। एक साथ 3–5 अण्डे दिये जाते हैं तथा इनका प्रजनन वर्ष भर चलता रहता हैं।

यह चिड़िया सर्वाहारी है तथा सभी प्रकार के अनाज के दाने, कीड़े, फल व पकाई हुई खाद्य सामग्री को खाती है। प्रायः खाद्यान्न भण्डारो तथा पकी हुई फसल के खेतो के आस-पास देखी जा सकती है। दिन मे कड़ी धूप के समय छोटे-छोटे छायादार वृक्षों पर यह विश्राम करती है।

नियन्त्रण—1. खाद्यान्न भण्डारो/गोदामो के द्वार पर रस्सी का बना जाल लगाने से यह अन्दर प्रवेश नही कर पाती।

2. घर के दरवाजे, खिड़कियाँ, रोशनदान आदि लोहे की जाली से ढके होने चाहिए।

3. आवश्यकता होने पर बाजरा के दानों को 0.2 प्रतिशत किसी कीटनाशी के घोल में भिगोकर तथा सुखाकर किसी मिट्टी के प्याले मे रखा जा सकता है, जिसे खाने से ये मर जाती है।

2. कबूतर—कोलम्बा लिविया (Columba Livia Gmelin)

गण—कोलम्बीफार्मेस (Columbiformes)

कुल—कोलम्बिडी (Columbidae)

यह समस्त भारत मे विशेषकर सार्वजनिक स्थान जैसे—मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा, धर्मशाला, रेलवे स्टेशन, अस्पताल, अनाज की मण्डी, पुराने ऐतिहासिक भवनों तथा पकी फसल के आस-पास बहुतायत से पाया जाता है। यह लगभग

32 से० मी० लम्बा सलेटी रंग का होता है। इसकी गर्दन तथा वक्ष का ऊपरी भाग चमकीला, हरे रंग का होता है। इसकी गुटर-गूँ की आवाज से सभी परिचित होंगे। इसे पवित्र पक्षी माना जाता है। सभी जाति व वर्गों के लोग इसे प्रतिदिन ज्वार, बाजरा, मक्का गेहूँ आदि अन्न खिलाना पुण्य का कार्य मानते हैं।

ये भारी संख्या में एक साथ रहते हैं तथा पकी फसलों, खलिहानों व धान्यागारों पर एक साथ टूट पड़ते हैं। घरों तथा सार्वजनिक स्थानों पर ये अपनी आवाज तथा मल-त्याग के कारण कण्टक माने जाते हैं।

घरों के झरोखे, छतों, खाली पड़े हुए भवनों में ये घोंसला बनाते हैं। इनका घोंसला लकड़ी के टुकड़ों तथा चीथड़ों का बना होता है। एक घोंसले में प्रायः दो अण्डे दिये जाते हैं। नर व मादा दोनों ही घोंसला बनाने तथा बच्चे पालने का काम करते हैं। एक वर्ष में ये कई बार प्रजनन करते हैं।

नियन्त्रण—1. चूँकि इसे पवित्र पक्षी माना जाता है। अतः लोग इसे, विशेषकर राजस्थान में, मारना अपराध मानते हैं। वरना शिकार करके इसे खाने के काम लिया जा सकता है, क्योंकि इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

2. घरेलू चिड़िया की भांति इसे भी जाली लगाकर घर, गोदाम/भण्डार आदि में प्रवेश से रोका जा सकता है।

3. किसी कीटनाशक घोल में भिगोए हुए दाने खाने से ये भी मर जाते हैं।

3. घरेलू चूहे (House rats)

वर्ग—मैमेलिया (Mammalia)
गण—रोडेन्शिया (Rodentia)
कुल—म्युरिडी (Muridae)

चूहा मनुष्य के प्रमुख शत्रुओं में से एक है। यह सर्वाहारी होता है। इसकी कुतरने की आदत होती है। मानव उपयोग की सभी वस्तुएँ जैसे—खाद्यान्न, फल, सब्जी, मछली, मांस, तेल, घी, ओढ़ने, बिछाने व पहनने के कपड़े लकड़ी के दरवाजे, खिड़कियाँ, किताब, कापी आदि को क्षति पहुँचाते हैं। जितना अनाज ये खाते हैं उससे कहीं अधिक अनाज ये अपना मल-मूत्र त्याग कर अथवा अपने शरीर के बाल आदि मिलाकर नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार नष्ट किया गया अनाज कभी-कभी तो पशुओं के खाने योग्य भी नहीं रह जाता। इतना ही नहीं, मनुष्य व उसके उपयोगी पशुओं में ये अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैलाते हैं। प्लेग इनके द्वारा मनुष्य में फैलाई जाने वाली सबसे भयानक बीमारी है। अनुमान है कि सन् 1951 में समाप्त हुई प्लेग की बीमारी में भारत में 1,25,00,000 लोगों की मृत्यु हुई। चूहों द्वारा फैलाई जाने वाली अन्य बीमारियों में टाइफस ज्वर, अमीबाइसिस, ट्राइकिनोसिस, लेप्टोस्पोरोसिस एवं आमातिसार प्रमुख हैं। यदि उचित उपचार न किया जाये तो चूहे द्वारा काटे गये व्यक्ति को टिटनस जैसी घातक बीमारी भी हो सकती है।

स्वभाव एवं निवास—चूहे स्वभाव से अत्यन्त शंकालु, चतुर, चंचल तथा सूक्ष्मग्राही होते हैं। इनमे श्रवण, स्वाद, स्पर्श व गन्ध की विशिष्ट क्षमता होती है। इनके थूथन पर विद्यमान गलमुच्छे (Vibrissae) खतरे का पता लगाने मे सहायक होते हैं। इनकी पूँछ पर भी एक ज्ञानेन्द्रिय होती है जिससे खाद्य-पदार्थ का पता लगाने मे सहायता मिलती है। अपनी पूँछ को खाद्य-तेल मे डालकर ये स्वय चाटते हैं तथा दूसरे चूहों को चटाते हैं।

चूहे प्रायः रात्रि में सक्रिय रहते हैं, लेकिन घरों में अँधेरे तथा सुनसान कमरे में दिन में भी सक्रिय हो सकते हैं। ये एक मीटर से अधिक दूर नहीं देख पाते और न ही रंग-भेद कर पाते हैं। चूहे प्रायः रात्रि के प्रारम्भ तथा सूर्योदय से पहले दो बार भोजन करते हैं।

चूहे बिल बनाने, ऊँचाई पर चढ़ने, तैरने तथा लड़ने मे बहुत निपुण होते हैं, शरीर को सन्तुलित रखने की इनके अन्दर विशेष क्षमता होती है। छ मीटर की ऊँचाई से भी यह अपने शरीर को सन्तुलित रखकर पैरों के सहारे कूद सकता है। चूहा पानी के बिना तीन दिन तथा भोजन के अभाव में छः दिन तक जीवित रह सकता है।

जीवन-इतिहास – मादा चूहा वर्ष में 5–6 बार प्रजनन करती है तथा हर बार लगभग 8–10 बच्चे पैदा करती है। गर्भकाल 21 दिन होता है। नवजात चूहे के पैर अविकसित तथा आँख व कान बन्द होते हैं। तीन माह में यह पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर वयस्क हो जाता है। चूहों का एक युग्म वर्ष भर में 800–900 चूहे पैदा कर सकता है। चूहे की उम्र 3 वर्ष होती है, लेकिन सक्रिय-काल 18 मास ही होता है। इनके बिल मे प्रजनन कक्ष होता है, जिसमे गर्भवती मादा रहती है तथा बच्चों को जन्म देती है। बिल में एकत्रित भोजन शिशु चूहों को भोजन के काम आता है। नर चूहा अपनी अधिकांश शक्ति व समय खाद्य-पदार्थों की खोज मे लगाता है। मादा भोजन एकत्रित करने तथा बच्चों के पालन पोषण का कार्य करती है। यही कारण है कि पाश में पकड़े गए अधिकांश चूहे नर तथा विष-चुग्गा खाकर मरने वाले अधिकांश चूहे मादा होती हैं।

घरेलू चूहों की प्रमुख जातियाँ

1. सामान्य भारतीय चूहा—रैटस रैटस (Rattus rattus) (चित्र 22)—यह घरों मे पाया जाता है और चढ़ने में प्रवीण होता है। इसे बिल बनाना नहीं आता है। आवश्यकता पड़ने पर अपने छिपने के लिए दीवार तथा फर्श पर साधारण सा असमान बिल बनाता है। यह एक विशेष प्रकार की चूँ-चूँ की आवाज करता है।

इसके शरीर का ऊपरी भाग गन्दे, काले, भूरे अथवा मटमैले रंग का तथा पेट सफेद होता है। इसके शरीर की लम्बाई (सिर+पेट) 15–20 से०मी० तथा पूँछ की लम्बाई 20–25 से० मी० होती है। पूँछ मूल से सिरे की ओर धीरे-धीरे पतली होती जाती है तथा यह शरीर से लम्बी होती है।

चित्र 22.घरेलू चूहा रैटस रैटस

2. भूरा छत अथवा पानी के जहाज का चूहा—रैटस नार्वेजिकस (Rattus norvegicus)—यह घरों, छतों, नालियों मे तथा बन्दरगाहो पर अधिकतर पाया जाता है। यह चढ़ने तथा तैरने में अत्यन्त निपुण, लेकिन बिल बनाने मे ऐसा नहीं होता है। यह भोजन की खोज मे बिल से अधिक दूर नही जाता, 20 से 40 मीटर के अन्दर ही रहता है।

इसका शरीर 25–30 से० मी० लम्बा, पीठ की ओर भूरा तथा पेट सफेद होता है। इसकी पूँछ मूल से छोर तक समान रूप से पतली नही होती है। पूँछ के सिरे पर बालो का एक गुच्छा होता है। पूँछ सिर+शरीर की कुल लम्बाई से छोटी होती है।

3. साधारण घरेलू मूपक—मस मस्कुलस (Mus musculus) (चित्र 23) यह कुशल आरोहक तथा बिल बनाने में भी निपुण होता है। इसका बिल प्रायः दीवार के आर-पार होता है। इसका सिर+शरीर 5–8 से०मी० लम्बा, थूथन नुकीला, पीठ गहरी अथवा रेतीली भूरी तथा पेट सफेद या हल्का भूरा होता है।

चित्र 23. घरेलू मूषक - मस मस्कुलस

इसकी पूँछ शरीर से अधिक लम्बी होती है। शरीर से एक विशेष प्रकार की बदबूदार गन्ध आती है।

घरों में चूहों द्वारा खोदी गई ताजी मिट्टी, कुतरे हुए सामान, मल-मूत्र अथवा पंजों के निशान देखकर इनकी उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

चूहा नियन्त्रण

(अ) बचाव (Prevention)—इस विधि मे ऐसे उपाय किये जाते हैं जिससे भवन चूहा-परिरक्षी (Rat proof) हो जाये और चूहे अन्दर प्रवेश नही कर सकें। इसके निम्न प्रकार हैं—

(i) खाद्यान्न भण्डार अथवा गोदाम पक्का तथा फर्श कंकरीट का बना तथा सीमेन्ट से प्लास्टर किया होना चाहिए।

(ii) भवन से पानी निकास के सभी छिद्र भली-भाँति बन्द होने चाहिए।

(iii) लकडी के दरवाजों के नीचे लगभग 15 से० मी० चौड़ी टिन अथवा एल्युमीनियम की चद्दर की पट्टी लगी होनी चाहिए ताकि चूहे इसे कुतर नहीं सकें। दरवाजे व फर्श के बीच बिल्कुल भी खाली जगह नहीं होनी चाहिए।

(iv) खिड़कियाँ तथा रोशनदान फर्श से एक मीटर से भी अधिक ऊपर तथा लोहे की जाली से ढके होने चाहिए।

(v) मकान की कुर्सी जमीन की सतह से लगभग एक मीटर ऊँची होनी चाहिए तथा इसके चारो ओर छज्जा निकला होना चाहिए ताकि चूहे ऊपर न चढ सकें।

(vi) नींव गहरी तथा L (एल) के आकार की होनी चाहिए ताकि चूहे जमीन के अन्दर से भवन में प्रवेश न कर सकें।

(vii) छत से आने वाला पानी का निकास पाइप जमीन से कम से कम एक मीटर ऊपर होना चाहिए तथा इसका मुँह लोहे की जाली से ढका हुआ होना चाहिए। इसके अलावा चूहों के चढने के लिए रस्सी तथा तार आदि भी भवन से लगे नहीं होने चाहिए।

(viii) भवन के आस-पास पानी एकत्रित नहीं होना चाहिए, क्योंकि पानी के अभाव मे ये अधिक दिन तक जीवित नही रह सकते।

(ब) विनाश

(1) विपाशन द्वारा (By trapping)—चूहों को पकड़ने के लिए उपयोग मे लाये जाने वाले यन्त्र को पाश (trap) कहते हैं। ये मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं—प्रथम, वे जिनमें चूहे जीवित पकड़ जा सकते हैं। जैसे—लकड़ी की चूहे-दानी व वन्डर ट्रैप और द्वितीय, वे जिनमे चूहे पकड़े जाते ही मर जाते हैं, जैसे—ट्रीडल ट्रैप या ब्रेक बोन ट्रैप (हड्डी तोड़ पाश)।

बन्डर ट्रैप का उपयोग चूहे पकड़ने के लिए अधिकतर किया जाता है। एक रात्रि में इस पाश में 16 चूहे पकड़े जा सकते हैं। पकड़े हुए चूहों को लोग प्रायः दूसरे स्थानों पर ले जाकर छोड़ देते हैं, लेकिन ऐसा नहीं करना चाहिए और पकड़े हुए चूहों का मार देना चाहिए।

पाश/चूहेदानी के उपयोग में ध्यान देने योग्य बातें

1. पाश अच्छी तरह साफ होना चाहिए। इस पर चूहों के खून के धब्बे, बाल आदि नहीं लगे होने चाहिए। इससे चूहों की गन्ध नहीं आनी चाहिए। गन्ध से चूहे आकृष्ट नहीं होते। लेकिन इस बारे में वैज्ञानिकों में मत विभिन्नता है। कुछ के अनुसार गन्ध आने से अन्य चूहे अधिक आकृष्ट होते हैं।

2. पाश के अन्दर किसी अच्छे प्रलोभक जैसे—तली हुई पकौड़ी, रोटी, सिका हुआ आटा, मांस, मछली, टमाटर, प्याज आदि रखना चाहिए। थोड़ा-सा प्रलोभक पाश के बाहर फर्श पर भी बिखेर देना चाहिए।

3. पाश को सायंकाल अँधेरा होने पर किसी छिपे स्थान अथवा कोने में रखना चाहिए। बार-बार इसका स्थान परिवर्तित करते रहना चाहिए।

4 पाश से मनुष्य के हाथों की गन्ध नहीं आनी चाहिए। इसको समाप्त करने के लिए पाश छूने से पहले हाथों पर हल्की-सी हींग लगा लेनी चाहिए।

(2) रसायन द्वारा

विष चुग्गा का उपयोग—चूहों के नाश के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले रसायनों को रोडेन्टीसाइड/रैटीसाइड/चूहा-नाशी कहते हैं। इस विष को प्रलोभक में मिलाकर विष-चुग्गा तैयार किया जाता है जिसको खाने से चूहा मर जाता है। प्रलोभक में मिलाए जाने वाले विष दो प्रकार के होते हैं—

(i) तीव्र विष (Acute Poison)—इसके खाने पर 2 से 6 घण्टे के अन्दर मृत्यु हो जाती है तथा विष की एक ही मात्रा मृत्यु के लिए पर्याप्त होती है। उदाहरण—जिंक फास्फाइड।

(ii) दीर्घकालिक विष (Chronic Poison)—इसके खाने के कई दिन बाद मृत्यु होती है तथा मृत्यु के लिए विष की कई मात्राओं की आवश्यकता होती है। जैसे—वारफेरिन; ये प्रतिस्कन्दक विष (Anti Coagulant poison) भी कहलाते हैं। इनके कारण रक्त जमने का गुण समाप्त हो जाता है।

1. जिंक फास्फाइड—*यह काले रंग का चूर्ण होता है, जिसमें फॉस्फीन की तेज़ गन्ध आती है।* विष चुग्गे में 2–3 प्रतिशत विष का उपयोग करते हैं। इसका चुग्गा बनाने के लिए 2–3 भाग विष तथा 97–98 भाग (भार के आधार पर) खाद्य-सामग्री मिलानी चाहिए। खाद्य-सामग्री चूहे का प्रिय भोजन जैसे—आटा, दाल (भीगी हुई) आदि हो सकती है। इसमें गुड़/पिसी हुई चीनी तथा मूँगफली/तिल्ली का तेल प्रलोभक के रूप में मिलाना चाहिए। आटे की छोटी-छोटी टिकिया को

बेलकर उसमें विष को उसी प्रकार भरकर जैसे—कचौरी में मसाला भरा जाता है, तैयार करते हैं। इस विष-चुग्गे को उपयोग के लिए मिट्टी के दिये मे रखा जाता है। यह अत्यन्त घातक विष है तथा धूप व नमी के सम्पर्क मे शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसमे घी व तेल मिलाने से चूहे के शरीर में फॉस्फोरस का शोषण बढ़ जाता है। विष-चुग्गा के पास मे गीली बोरी का टुकड़ा रख देते हैं। विष खाने के बाद चूहे प्यास महसूस करते हैं तथा पानी के लिए गीली बोरी चूसते हैं। इस प्रकार नमी के कारण विष का प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है।

2. वारफेरिन—यह एक गन्धहीन, स्वादहीन धीमी क्रिया वाला तथा रक्त जमने की क्षमता नष्ट करने वाला विष है। चूहों को नष्ट करने के लिए 0.025 प्रतिशत सक्रिय विष वाला विष-चुग्गा उपयोग किया जाता है। यह बाजार में 0.5 प्रतिशत शक्ति वाले चूर्ण के रूप में मिलता है। विष-चुग्गा बनाने के लिए वारफेरिन (0.5 प्रतिशत सक्रिय तत्व) का 5 भाग, खाद्य-पदार्थ का 92 भाग तथा वनस्पति तेल का 3 भाग काम मे लिया जाता है।

विष-चुग्गा बनाने की विधि जिंक फास्फाइड के समान ही है। यह चूहानाशी अधिक प्रभावशाली होता है, क्योंकि इसमे पूर्व प्रलोभक देने की आवश्यकता नही पड़ती। चूहों मे विष-त्याग (Bait Shyness) की भावना का भी विकास नही होता तथा चूहे इसको खाने मे हिचकते नही, क्योंकि यह धीरे-धीरे क्रिया करता है। इसका मुख्य अवगुण यह है कि यह महँगा अधिक है तथा इसका लगातार 4 से 6 दिनों तक उपयोग ही चूहों को मारने मे प्रभावी होता है।

3 स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड—यह बहुत अधिक विषैला तथा कड़वे स्वाद वाला विष है जो चूर्ण के रूप में मिलता है। इसका 0.125 प्रतिशत सक्रिय तत्व चूहों को मारने के लिए प्रभावी होता है। स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड एक भाग, आटा 800 भाग तथा गर्म पानी 2 भाग मिलाकर विष-चुग्गा तैयार किया जाता है। विष को गर्म पानी में घोलकर पुनः शीरे या गुड़ के गाढ़े घोल में भली प्रकार मिला कर आटा मिलाते हैं।

इस चूहानाशी रसायन का लाभ यह है कि तीव्र विष होने के कारण शीघ्र प्रभाव दिखाता है, परन्तु यह सभी स्तनधारियों के लिए अत्यन्त विषैला है तथा इसके उपयोग के पहले पूर्व प्रलोभक (Prebaiting) देने की आवश्यकता पड़ती है। स्वाद में बहुत कड़वा होने के कारण इसमें गुड़ मिलाना आवश्यक है।

4. बेरियम कार्बोनेट—यह एक स्वादहीन, गन्धहीन, सफेद रवेदार लवण है जो पानी में नही घुलता. इसमे 98 प्रतिशत सक्रिय विष होता है। —बीस से बीस प्रतिशत बेरियम कार्बोनेट की शक्ति वाला विष-चुग्गा चूहों को मारने के लिए पर्याप्त है। बेरियम कार्बोनेट एक भाग, गेहूँ का आटा छः भाग और शीरा, गुड़ एक भाग मिलाकर विष-चुग्गा बनाया जाता है।

आदर्श विष-चुग्गा के गुण

1 आकर्षक और स्वाद में अच्छा होना चाहिए।

2 कम खर्च में आसानी से मिल जाय।

3. किसी प्रकार की गन्ध नहीं होनी चाहिए।

4 चूहों पर शीघ्र प्रभावी तथा मनुष्य एवं अन्य पालतू जानवरों के लिए घातक नही होना चाहिए।

विष-चुग्गे का उपयोग करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

1. विष-चुग्गे का प्रयोग शाम को अँधेरा होने पर करना चाहिए।

2. चूहे बहुत ही शंकालु एवं चालाक प्राणी होते हैं, अतः उन्हें चुग्गे से परिचित कराने के लिए पहले 2–3 दिन तक विषहीन चुग्गे को पूर्व प्रलोभक के रूप में उपयोग करना चाहिए।

3. विषहीन चुग्गा नाम-मात्र ही रखना चाहिए जिससे चूहे इसे पेट भर नही खा सकें तथा और अधिक खाने की खोज में दूसरे चुग्गो तक जायें।

4. विष-चुग्गा गिनती के स्थानो पर ही रखना चाहिए तथा दूसरे दिन प्रातः काल सबसे पहले उठकर बचे हुए चुग्गों को एकत्रित कर सुरक्षित स्थानों पर रख देना चाहिए।

5. विष-चुग्गे से लोगों को दूर रखने के लिए उस स्थान पर बड़े-बड़े अक्षरों मे 'खतरा' तथा अन्य आवश्यक हिदायत लिख देनी चाहिए।

विष के उपयोग सम्बन्धी सावधानियाँ

1. चूहा-नाशियों को किसी सुरक्षित स्थान जैसे—अलमारी, सन्दूक आदि में ताला लगाकर रखना चाहिए। इनको यथासम्भव सूर्य के प्रकाश, खाद्य-पदार्थों, चारा, दवाओं से दूर तथा पालतू जानवरों व बच्चो की पहुँच से बाहर रखना चाहिए।

2. केवल सही और ठीक प्रकार से लेबल लगे पैकेट ही खरीदने चाहिए।

3. पैकेटों पर लिखे निर्देश का पूरा पालन करना चाहिए।

4. विशेषज्ञ द्वारा बतायी गयी मात्रा ही प्रयोग करनी चाहिए।

5. रसायनों का प्रयोग करते समय रबर के दस्तानों का उपयोग करना चाहिए तथा उन्हें हिलाने व मिलाने के लिए लकड़ी अथवा शीशे की छड़ का उपयोग करना चाहिए।

6. विष का त्वचा मे सम्पर्क नही होने देना चाहिए यदि ऐसा हो जाये तो तुरन्त साबुन मे धोना चाहिए।

7. विष/धूमक का उपयोग करते समय खाद्य-पदार्थ अथवा बीडी, सिगरेट का सेवन नही करना चाहिए।

8. केवल स्वस्थ व समझदार व्यक्तियों को ही विष का उपयोग करना चाहिए। जिनके शरीर पर घाव आदि हो उन्हें दूर ही रहना चाहिए।

9 चूहा नाशियो के सभी खाली डिब्बों तथा पैकेटो को अन्य किसी काम में नहीं लाना चाहिए।

10. उपयोग के पश्चात् बचे हुए विष-चुग्गों को भी नष्ट कर देना चाहिए।

11. कार्य समाप्त होने पर शीघ्र ही अच्छी तरह स्नान कर लेना चाहिए।

12. विष द्वारा मरे चूहो को गड्ढे खोदकर मिट्टी मे गाड़ देना चाहिए।

13. सावधानी के लिए उस स्थान पर एक सूचना-पट्ट लगा देना चहिए।

यदि किसी व्यक्ति के शरीर मे विष पहुँचने के लक्षण दिखाई दे तो उसे तुरन्त डॉक्टर को दिखाना चाहिए।

सामान्य चूहा नाशियों के विषैले लक्षण व उनका उपचार

क्रम सं०	चूहा-नाशी	विषाक्तता लक्षण	उपचार
1.	जिन्क-फॉस्फाइड	हृदय पक्षाघात तथा अगों में रक्त का वहन रुक जाना, यकृत का क्षयण। एक घटे के अन्दर मृत्यु।	सरसो का चूर्ण एक चम्मच एक एक गिलास गर्म पानी मे दे कर उल्टी कराना चाहिए। इसके बाद पोटैशियम पर मैंगनेट (5 ग्राम) गर्म पानी मे तथा फिर तूतिया (½ चाय का चम्मच) एक गिलास पानी मे देना चाहिए। अट्ठाइस ग्राम दूध या मिल्क ऑफ मैग्नेसिया दिया जा सकता है।
2.	वारफेरिन	प्रोथ्रोम्बिन तथा अन्य रक्त जमा देने वाले पदार्थों के नष्ट होने के कारण आन्तरिक तथा बाह्य रक्त स्राव। 5–6 दिन मे मृत्यु।	विटामिन के (K) का इंट्रा वीनस इंजेक्शन तथा रक्त भी देना चाहिए।
3.	बैरियम कार्बोनेट	तीव्र अतिसार तथा अति मूत्र, प्रारम्भ मे ऐंठन परन्तु बाद मे कष्ट बढ़ता जाता है और पेशियों मे पक्षाघात हो जाता है अन्त मे 48 घंटे मे मृत्यु हो जाती है।	मैग्नीशियम सल्फेट या उल्टी कारक तथा रेचक (परगेटिव) देना चाहिए दूध या पानी के साथ अण्डे की सफेदी देनी चाहिए। कोई हृदय तथा श्वास उत्तेजक औषधि देनी चाहिए।

4.	स्ट्रिकनीन हाइड्रो-क्लोराइड	केन्द्रीय नाड़ी संस्थान की उत्तेजना से टिटेनस जैसी तीव्र ऐंठन।	उल्टी कराना तथा सार्वभौमिक विष-रोधक देना चाहिए। 8 ग्राम चार कोल पानी देकर कोई सिडेटिव देना चाहिए तथा रोगी को गर्म रखना चाहिए।
5.	हाइड्रो-साइनिक एसिड गैस	विषम उत्तेजना तथा उसके बाद बेहोशी व श्वास पक्षाघात। मृत्यु से पहले ऐंठन होती है।	सोडियम नाइट्रेट, एमाइल नाइट्रेट अथवा मेथाइलीन ब्ल्यू देकर सोडियम थायोसाइनेट देना चाहिए। आवश्यक होने पर कृत्रिम श्वसन देना चाहिए।
6.	फॉस्फीन गैस	चक्कर आना, उल्टी की इच्छा होना, सिर दर्द तथा अतिसार।	फेफड़ों की जलीय शोथ (pulmonary oedema) में ग्लूकोज का हाइपर टोनिक घोल दिया जाना चाहिए। आइसोटोनिक सेलाइन या ग्लूकोज देना चाहिए, यदि आवश्यकता हो तो कृत्रिम श्वसन भी देना चाहिए।

(ग) कवक

कवक द्वारा संचित अनाज को क्षति—संयुक्त राष्ट्र के कृषि एवं खाद्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार कटाई के बाद और उपभोक्ता तक पहुँचने के पहले लगभग 5% खाद्यान्न प्रतिवर्ष नष्ट हो जाता है। ऐसा अनुमान है कि विश्व के खाद्यान्न उत्पादन का 1 से 2 प्रतिशत अनाज सूक्ष्मजीवों द्वारा नष्ट हो जाता है।

लगभग 150 विभिन्न प्रकार के कवक संचित खाद्यान्न को क्षति पहुँचाते हैं। अनाज पकते समय यदि आर्द्रता अधिक हो तो संचयन के दौरान कवक का संक्रमण अधिक होता है। संचित अनाज में बैक्टीरिया का आक्रमण इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि उनकी वृद्धि के लिए स्वतन्त्र जल की आवश्यकता होती है और खाद्यान्न संचयन ऐसी परिस्थिति में होना है जहाँ स्वतन्त्र जल नहीं मिल पाता।

संचित अनाज को दूषित करने वाले कवक को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(1) खेत के कवक (Field fungi)

(2) संचयन के कवक (Storage fungi)।

(1) खेत के कवक—इनका संक्रमण खेत में ही पौधों पर विकासशील दानों में हो जाता है। इस श्रेणी के प्रमुख वंश—आल्टरनेरिया (Alternaria), ड्रेकस्लेरा (Drechslera), फ्यूजेरियम (Fusarium), क्लैडोस्पोरियम (Cladosporium), डिप्लोडिया (Diplodia), कीटोमियम (Chaetomium), राइजोपस (Rhizopus) आदि हैं।

भारत मे धान्य को क्षति पहुँचाने वाले खेत के कवक में ड्रेकस्लेरा प्रमुख है, खेत के कवक के संक्रमण के कारण दानों का विवर्णन (discolouration) हो जाता है, वे क्षीण हो जाते हैं, भ्रूण मर सकता है तथा कई प्रकार की शर्णता (Blight) उत्पन्न हो जाती है।

(2) संचयन के कवक—सचयन काल मे दानो के अंदर अथवा उनके ऊपर विकसित होने वाले कवक इसी श्रेणी में आते हैं। इसमे ऐस्परजिलस (Aspergillus) की विभिन्न जातियाँ जैसे—ऐ० ग्लौकस (A. glaucus), ऐ० एम्स्टेलोडैमी (A. amstelodami), ऐ० रूबेर (A. ruber), ऐ० रेपेन्स (A. repens), ऐ० रेस्ट्रिक्टस (A. restrictus), ऐ० कैन्डीडस (A. candidus), ऐ० ऑक्रेसीयस (A. ochraceous), ऐ० फ्लैवस (A. flavus), ऐ० वर्सीकोलर (A. versicolor), तथा ऐ० टमारी (A. tamarii) हैं। इसके अतिरिक्त पेनीसीलियम जाति के कवक भी संचित अनाज को क्षति पहुँचाते हैं। जीओट्राइकम (Geotrichum) जाति के कवक भी दूषित अनाज से सम्बद्ध पाए गए हैं, परन्तु ये स्वयं अनाज को दूषित नही करते हैं।

अनाज पर कवक के दुष्प्रभाव

(i) अंकुरण क्षमता का ह्रास—संचयन के कवक का संक्रमण मुख्य रूप से भ्रूण (embryo) के स्थान पर होता है। जिससे भ्रूण मर जाता है, अधिक आक्रमण होने पर सम्पूर्ण बीज बोने के अयोग्य हो जाता है। यदि अंकुरण हो भी गया तो पौधे अत्यन्त दुर्बल होते हैं तथा उन पर बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है।

(ii) जर्म का विवर्णन (Discolouration of germ)—कवक के प्रकोप से दानों का जर्म भाग काला पड़ जाता है, ऐसे दानों को रोगी (sick) अथवा जर्म-क्षतिग्रस्त दाने कहते हैं।

(iii) जैव रासायनिक परिवर्तन—कवक के संक्रमण के कारण अनाज में अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं इनमें से निम्न प्रमुख हैं—(क) वसा अम्लों में वृद्धि, (ख) अपचायी शर्करा में वृद्धि, (ग) अनपचयी शर्करा मे कमी, (घ) श्वसन क्रिया मे वृद्धि।

पहले ऐसी धारणा थी कि इस प्रकार के परिवर्तन दानों में एन्जाइम की क्रिया के फलस्वरूप होते हैं। लेकिन अब यह प्रमाणित हो चुका है कि ये परिवर्तन सचयन के कवक के कारण होते हैं।

(iv) **आर्द्रता की मात्रा में वृद्धि**—कवक अपनी वृद्धि के दौरान जो पदार्थ अपने भोजन के रूप मे लेते है। उसका कुछ भाग पानी मे परिवर्तित हो जाता है और यह पानी समस्त संचित अनाज मे फैल जाता है जिससे पूरे अनाज में संक्रमण की सम्भावना बढ जाती है।

(v) **संसाधन गुण पर प्रभाव**—कतिपय कवक दानो के संसाधन गुण को प्रभावित करते हैं। ऐस्परजिलस ग्लौकस समूह के दो सदस्य ऐ० ऐम्स्टेलोडॅमी तथा ऐ० चेवेलिएरी (A. chevalieri) संसाधन की क्रिया मे निकल जाते हैं, तथा आटा व अन्य पिसे हुए उत्पादों के गुणों को प्रभावित करते हैं, स्टार्च उत्पन्न करने वाले दानों तथा तेल उत्पन्न करने वाले दानों जैसे सोयाबीन, मूँगफली, फ्लैक्स, अलसी आदि पर इनका दुष्प्रभाव होता है।

(vi) **ताप में वृद्धि**—कवक के संक्रमण के परिणामस्वरूप संचयन साधन के अन्दर ताप मे वृद्धि भी पायी गयी है।

(vii) **माइकोटाक्सिन का उत्पादन**—कवक द्वारा उत्पन्न किए गए अत्यन्त विषैले उपापचयी उत्पादो के समूह को माइकोटाक्सिन कहते हैं। ये संचयन के कवक द्वारा भी उत्पन्न किये जाते हैं, इनसे मनुष्य एवं जन्तुओ के शरीर मे अनेक प्रकार की क्रियात्मक अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। इनके द्वारा उत्पन्न बीमारी को माइकोटॉक्सिकोसिस (Mycotoxicosis) कहते है।

ऐस्पर्जिलस फ्लैवस से संदूषित मूँगफली में प्रतिदीप्तिशील माइकोटाक्सिन—अफ्लाटॉक्सिन पाया गया है, कीट ग्रसन के कारण भी कई प्रकार के कवक का संक्रमण हो जाता है जो माइकोटाक्सिन उत्पन्न करते हैं। (सारिणी—1)

सारिणी—1 संचित अनाज के कीटों से पृथक की गयी कवक जातियाँ

क्रम सं०	कीट	माइकोटाक्सिन उत्पन्न करने वाली जातियाँ	अन्य जातियाँ
1.	साइटोफिलस ओरायजी	ऐस्पर्जिलस फ्लैवस, ऐ० कैन्डीडस, ऐ० ओक्रैसीयस, ऐ० फ्यूमीगेटस	ऐ० सिडोनी, ऐ० रूबेर, ऐ० चेवेलिएरी, ऐ० नाइजर, पेनीसीलियम क्युलोसम, ऐम्बलायोस्पोरम थलेडोस्पोरियम
2	ट्राइबोलियम कैस्टेनियम	ऐ. फ्लैवस, ऐ. कैंडीडस, पेनीसीलियम आइलैन्डिकम	ऐ. वर्सीकॉलर, ऐ. नाइजर ऐ. रूबेर, ऐ. चेवेलिएरी

क्रम सं०	कीट	माइकोटाक्सिन उत्पन्न करने वाली जातियाँ	अन्य जातियाँ
3.	ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरिया	ऐ. फ्लेवस, ऐ. कैन्डीडस, पे. वाइर्लेन्डिकम	ऐ. रूबेर, ऐ. ग्लौकस ऐ. नाइजर, ऐ. सिडोवी, ऐ. वर्सीकॉलर, पे. रेस्ट्रिक्टम
4.	कैलेसोब्रूकस काइनेन्सिस	ऐ. फ्लेवस, ऐ. कैन्डीडस	ऐ. सिडोनी, ऐ. रूबेर ऐ. ग्लौकस
5.	ओराजीफिलस सुरिनामेन्सिस	ऐ. फ्लेवस, ऐ. ऑक्रेसीयस	ऐ. रेस्ट्रिक्टस, ऐ. ग्लौकस, ऐ. टेरियस, पे. ड्रौकम्बेन्स, क्लेडोस्पोरियम
6.	स्टेगोबियम पेनीसियम	ऐ. कैन्डीडस	ऐ. ग्लौकस
7.	राइजोपर्था डॉमीनिका	ऐ कैन्डीडस, ऐ. ऑक्रेसियस	ऐ नाइजर, ऐ. ग्लौकस
8.	ऐरेसीरस फैसीकुलेटस (Araecerus fasciculatus)	ऐ. फ्लेवस, ऐ कैन्डीडस	ऐ. सिडोनी, ऐ. रूबेर
9.	कोरसायरा सेफैलोनिका	ऐ. फ्लेवस, ऐ. कैन्डीडस ऐ. ऑक्रेसियस	ऐ नाइजर, ऐ. रेस्ट्रिक्टस ऐ. वर्सीकॉलर, पेनीसीलियम स्पाइनुलोसम, पे. कोरीलोफाइलम, माइक्रोस्पोरा
10.	एफेस्टिया कॉटेला	ऐ. फ्लेवस, ऐ. कैन्डीडस	ऐ. नाइजर, ऐ. ग्लौकस, ऐ. टेरीयस, ऐ. रूबेर, ऐ. वर्सीकॉलर

मधका छेदक के प्रमन के बाद कवक का संक्रमण होना पाया गया है। पौधों की संख्या अधिक व निषेचन कम होने पर भी कवक का संक्रमण हो सकता है। संचित अनाज में प्रायः ऐस्पर्जिलस व पेनीसीलियम का आक्रमण होता है, लेकिन

इनके अलावा फ्यूजेरियम (Fusarium), जिबरेला जी (Gibberella zeae) तथा डिप्लोडिया जी (Diplodea zeae) आदि जातियों का भी संक्रमण हो सकता है।

विभिन्न प्रकार के धान्य जैसे गेहूँ, जौ, तथा ज्वार, चावल, अनेक प्रकार की दालें तथा सब्जियों के बीजो पर भी विभिन्न जातियों के कवक का आक्रमण होता है। मूँगफली, तिल तथा सरसों में कवक द्वारा उत्पन्न अफ्लाटॉक्सिन की समस्या विशेष गम्भीर है।

संचयन के कवक का नियन्त्रण

(क) निरोधोपचार

1. सुखाना व वायु संचरण—अनाज के भंडार में वायु संचरण द्वारा उसका ताप कम किया जा सकता तथा अनाज को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। वायु संचरण से भंडार में समान ताप बनाए रखा जा सकता है। ऐस्पर्जिलस तथा पेनीसीलियम पर अनुसंधान के बाद पाया गया है कि कृत्रिम रूप से वायु संचारित भंडार में 14 माह तक अनाज भंडारण के बाद भी प्राकृतिक रूप से वातित भंडार की तुलना में ये कम क्रियाशील रहे। पूसा कोठी तथा वैज्ञानिक आधार पर निर्मित अन्य कोठियाँ सुरक्षित अनाज भंडारण के लिए अधिक उपयुक्त पायी गयी हैं।

2 पौधो की अच्छी जातियाँ तथा संचयन में स्वच्छता—खेत में फसल के पतन तथा अपक्षयण (Lodging and weathering), दाने अलग करते समय टूट जाने तथा संसाधन के दौरान हुई क्षति तथा अस्वच्छ खलिहान के कारण भंडार में फफूँदी का आक्रमण अधिक होता है। खलिहान तथा भण्डार में स्वच्छता रखकर भी कवक के प्रकोप को रोका जा सकता है। इसके अलावा फसल की ऐसी जातियों का उपयोग करना चाहिए जिनका पतन व अपक्षय न हो।

3. दानों में नमी की मात्रा में कमी—संचित अनाज को दूषित करने वाले अधिकांश कवक का संक्रमण दानों में 12 प्रतिशत से कम नमी होने पर नहीं हो पाता। अनुकूलतम नमी की मात्रा जिस पर अनाज को संचयन के दौरान कवक के संक्रमण से सुरक्षित रखा जा सकता है, 6 से 8 प्रतिशत है। नमी कम होने पर कीटों का प्रकोप भी नहीं होता है। इस विधि की एक कमी यह है कि दानो को सुखाने की क्रिया प्रायः महँगी पड़ती है, तथा कभी-कभी अधिक ताप पर सुखाकर नमी कम करने के दौरान दानों में गुणात्मक क्षति भी हो सकती है।

4. न्यून ताप पर संचयन—यदि अनाज संचयन 8—10° से० पर किया जाय तथा सम्पूर्ण भंडार में समान ताप बनाए रखा जाय तो कवक का संक्रमण नहीं होता है। इसके अलावा भंडार में विद्यमान कीट व बरूथी की वृद्धि भी रुक जाती है तथा वे निष्क्रिय अवस्था में चले जाते हैं।

(ख) रसायनिक नियन्त्रण

अनेक कवकनाशी रसायनों के उपयोग से भी भंडार में कवक का नियन्त्रण

किया जा सकता है, लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि रसायन के उपयोग से अनाज के स्वाद व अंकुरण क्षमता पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़े। इस प्रकार बीजों को प्राय: सुरक्षित रखा जाता है तथा इस क्रिया को बीजोपचार कहते हैं।

बीजोपचार के काम आने वाले कवकनाशी

कार्बनिक पारदीय (Organo mercurial) कवकनाशी जैसे ऐग्रिसैन जी. एन. (Agrisan G. N.) तथा सेरेसैन (Ceresan) को 2.5 ग्राम प्रति कि० ग्रा० बीज की दर से गेहूँ, जौ, ग्रोट, आदि की बीमारियों के नियंत्रण के लिए उपयोग किया गया है। गेहूँ का श्लथकंड (Loose smuh) बेनलेट (Benlate) अथवा विटावैक्स (Vitavax) अथवा बैविस्टिन (Bavistin) से 2 ग्राम प्रति कि० ग्रा० बीज की दर से उपयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है। मक्का, ज्वार, बाजरा का बीजोपचार थिराइड (Thiride) अथवा कैप्टान (Ceptan) द्वारा 2.5 ग्राम अथवा 2.0 ग्राम प्रति कि० ग्रा० बीज की दर से किया जाता है।

(ग) बीजोपचार विधियाँ

1. शुष्क मिश्रण (Drymix)—अनेक कवकनाशी चूर्ण के रूप मे मिलते है, जिन्हें बीजोपचार के काम मे लिया जाता है। सब्जी के बीजो को छोटे-छोटे पैकेटो में रखकर उसमें कवकनाशी चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह हिलाया जाता है ताकि कवकनाशी बीज के ऊपर अच्छी तरह लिपट जाय। इसी प्रकार थोड़ी मात्रा मे अन्य बीजों को भी छोटे-छोटे डिब्बो में भरकर उपचारित किया जाता है। बचा हुआ कवकनाशी बाहर निकाल दिया जाता है।

अधिक मात्रा मे सब्जियो के तथा अन्य बीजो को विशेष रूप से बनाए गए बीजोपचार ड्रम मे उपचारित किया जाता है। इस विधि में ड्रम को तीन चौथाई क्षमता तक भर लिया जाता है तथा उसमें आवश्यक मात्रा मे कवकनाशी मिलाकर हिलाया जाता है। यह क्रिया 10–15 मिनट तक की जाती है। इस प्रकार उपचारित बीज को तुरन्त बोने के काम मे लिया जा सकता है, यदि इस बीज को रखना हो तो उसमें नमी की मात्रा अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए उदाहरण के लिए धान्य मे 13 प्रतिशत अथवा इससे भी कम होनी चाहिए।

इस प्रकार बीजोपचार प्राय: बाह्य बीज-जनित व्याधियो के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

2 मग्न बीजोपचार (Steep treatment or wet seed treatment)—इस विधि द्वारा बीजोपचार के लिए बीज को कवकनाशी घोल में निश्चित समय तक डुबाकर पुन: बाहर निकालकर छाया में सुखा लिया जाता है। इस प्रकार ऐसे बीजों को उपचारित किया जाता है जिनकी सतह खुरदरी हो अथवा जो अन्त: बीज जनित व्याधि से ग्रसित हों।

3. कर्दम उपचार (Slurry treatment)–इस विधि में कवकनाशी का पानी में गाढ़ा घोल तैयार कर लिया जाता है तथा किसी मशीन द्वारा बीज पर छिड़क कर

बीज को सुखा लिया जाता है। इस प्रकार बीजोपचार प्रायः कर्दम उपचारक (Slurry treater) अथवा बीज संशाधन संयंत्र (Seed processing plant) में किया जाता है।

बीजोपचार के लिए उपयुक्त कवकनाशी

(क) असर्वांगी (Non-Systemic)

1. थिरम (Thiram)—टेट्रा मेथाइल थिरम डाइसल्फाइड (Tetra methyl thirum disulphide)—यह थिराइड 75 डी तथा थिराइड 75 डब्लू. पी. के रूप में मिलता है।

2. कैप्टान—एन ट्राइक्लोरो मेथाइलथायो-4-साइक्लो हेक्सेन—1,2—डाइकार्बोक्सीमाइड (n-trichloro methyl thio-4-cyclohexane 1,2 dicarboximide)—यह एस्सो कवकनाशी (Esso fungicide) 406, 83 अथवा 75 डब्लू. पी.; कैप्टान 83 डब्लू. डी. पी. अथवा कैप्टान 83 डब्लू के रूप में मिलता है।

3. पी. सी. एन. बी. (पेन्टा क्लोरोनाइट्रोबेन्जीन—Penta chloronitrobenzene)—यह पी. सी. एन. बी. 75 डब्लू पी. के रूप में मिलता है।

4. कैप्टाटोल (Captatol) N (1, 1, 2, 2 tetra chloromethyl Sulferyl–4–cyclohexane 1, 2–dicarboximide)—यह डाइफोलॉटान (Difolatan) 80 डब्लू पी० के रूप में मिलता है।

कार्बनिक पारदीय कवकनाशी

सेरेसान डी (Dry) (1 प्रतिशत मर्करी-फेनाइल मर्करी एसीटेट (phenyl mercury acetate); तथा सेरेसान डब्लू (wet) (2.5 प्रतिशत मर्करी-मेथॉक्सी-मेथाइल मर्करी क्लोराइड (methoxy methyl mercury chloride) के रूप में मिलता है।

(ख) सर्वांगी कवकनाशी (Systemic fungicide)

1 बेनीमिडाजोल कार्बामेट (Benimida zole carbamate)—यह बैविस्टीन 50 डब्लू पी अथवा 25 एस पी. (2, 3 मेथाक्सी कार्बोमोइल) (2, 3 methoxy-carbomoy) अथवा बेनोमिल 50 डब्लू. पी. मेथाइल 1–बुटाइल कार्बोमोइल (methyl 1–butyl carbomoyl) के रूप मे मिलता है।

2. कार्बोक्सिन (Carboxin)–5–6 डाइहाइड्रो-2-मेथाइल-1, 4-आक्सेथिन-3-कार्बोक्सीनिलिडो) 5-6 dihydro-2-methyl-1, 4 oxathin-3-carboxinilido)—यह विटावैक्स 75 डब्लू. पी. अथवा विटैक्स 75 डब्लू पी. के रूप मे मिलता है।

3. फेनफुराम (Fenfuram)-2-मेथाइल, फरन-3-कार्बोक्सीनिलिडो (2-methyl, faran-3-carboxinilido)—यह पैनोरम 25 आई० डी० एल० के रूप मे मिलता है।

4. प्रति जैविक (Antibiotics)—(i) ऐग्रीमाइसिन 100 यह स्ट्रैप्टोमाइसिन 15 प्रतिशत तथा टेरामाइसिन 15 प्रतिशत का मिश्रण है।

(ii) औरियोफन्जिन (Aureofungin)—यह हेप्टेन एन्टीबायोटिक, 33.3 डब्लू पी० के रूप में मिलता है।

बीजोपचार में सावधानी—बीजोपचार के काम आने वाले अधिकांश कवक नाशी विशेषकर कार्बनिक पारदीय कवकनाशी अत्यन्त विषैले होते हैं। अतः इन्हें बहुत सावधानी से उपयोग करना चाहिए। ये त्वचा तथा कपड़ों के सम्पर्क में नहीं आने चाहिए। उपचारित बीज को बच्चों, पालतू जानवरों तथा पक्षियों की पहुँच से दूर रखना तथा कवकनाशी के खाली डिब्बों को नष्ट कर देना चाहिए।

संगरोधक उपाय (Quarantine Measures) :

अनाज के साथ वाह्य तथा अन्तःबीज जनित व्याधियों के आयात-निर्यात को रोकने के लिए कई प्रतिबन्ध लगाये गये है। इसके अभाव में भारत मे कई व्याधियाँ अन्य देशों से आ गई।

सारिणी–2 क्वॅरेन्टीन के अभाव में भारत में आई व्याधियाँ

क्रम संख्या	बीमारी का नाम	देश (जहाँ से आई)	टिप्पणी
1.	गोभी पर क्रूसीफर्स का ब्लैक रॉट (Black rot of crucifers) (Xanthomonas Campestris) (जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस)	नीदरलैण्ड (यूरोप)	बीज द्वारा
2.	पक्सीनिया अरैकिडिस (Puccinia arachidis)	अफ्रीका	बीज द्वारा
3	गोल्डेन नीमैटोड—हेटरोडेरा रोस्टोकाइनेन्सिस (Heterodera rostochinensis)	—	पौध संरक्षण विभाग की सतर्कता से दक्षिण भारत के नीलगिरि क्षेत्र मे ही सीमित है।
4.	वार्ट ऑफ पोटैटो (Syndhytrium endobioticum)	—	दार्जीलिंग क्षेत्र तक ही सीमित है।

(i) एम्बार्गो तथा आयात परमिट (Embargo and Import Permit)—एम्बार्गो के अन्तर्गत किसी भी सामग्री के आयात/निर्यात पर पूर्णरूपेण प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है अथवा किसी सामग्री का आयात प्रतिबन्धित परमिट पर ही होता है।

(ii) खेत तथा प्रयोगशाला में निरीक्षण—अनाज के आयात/निर्यात के पहले उसका प्रतिदर्श लेकर खेत तथा प्रयोगशाला में निरीक्षण किया जाता है, ताकि उनमें किसी प्रकार की व्याधि का संक्रमण न हो।

(iii) विग्रसन तथा धूमन (Disinfestation and Fumigation)—आयात/निर्यात किये जाने वाले अनाज को धूमन/कीटनाशी/कवकनाशी द्वारा ग्रसन/संक्रमण मुक्त किया जाता है।

(iv) आयात के बाद निरीक्षण—देश में आयात के बाद अनाज के वितरण के पहले बीज को अंकुरित कराके व्याधि-मुक्तता के लिए परीक्षण किया जाता है, फिर वितरण होता है।

(v) प्रमाणीकरण—संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन के तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय पौध संरक्षण कनवेन्शन, रोम 1951 ने आयात/निर्यात किये जाने वाले पौधे/अनाज के लिए एक आदर्श पौध स्वास्थ्य प्रमाण-पत्र (Model Phyto Sanitary Certificate) का प्रावधान किया है जो विशेषज्ञों द्वारा दिया जाता है।

□□□

3

भण्डार में ग्रसन

भण्डार में ग्रसन के स्रोत

भण्डारों में सबसे अधिक समस्या कीट ग्रसन की है और ग्रसन के निम्न स्रोत हैं—

(i) खेत व खलिहान—उड़ने में सक्षम कीट प्रायः पकी फसल पर अथवा खलिहान में पड़े दानों पर अण्डे दे देते हैं। यह अनाज जब संचयन के लिए जाता है तो दानों में विद्यमान विभिन्न अवस्थाओं के कीट भी भण्डार में पहुँच जाते हैं। ट्राइबोलियम, एंगोमोइस मॉथ, धान का पतंगा तथा बादाम का पतंगा आदि का ग्रसन इसी प्रकार होता है।

(ii) पुराने भण्डार—कीटग्रस्त पुराने भण्डार खाली करने पर प्रायः पूर्ण रूप से कीटरहित नहीं हो पाते और भण्डार की दरारों, अनाज के दानों, मकड़ी के जालों, चूहों के बिल, पक्षियों के घोंसलों तथा भण्डार में रखे हुए अन्य सामानों में किसी न किसी अवस्था में कीट पड़े रह जाते हैं। जब नया अनाज भण्डार में आता है तो ये कीट उसे क्षति पहुँचाते हैं। खपरा भृंग कई वर्षों तक इस प्रकार भण्डार में नये अनाज को क्षति पहुँचाता पाया गया है। ([illegible] 1952)

(iii) अनाज रखने के उपकरण—हमारे देश में अनाज प्रायः बोरियों, लकड़ी के टोकरों तथा मिट्टी के बर्तनों में भरकर रखा जाता है। इन बर्तनों में, विशेषकर बोरियों तथा टोकरों में कीट किसी न किसी अवस्था में छिपे रहते हैं तथा स्वस्थ अनाज तक पहुँच जाते हैं।

(iv) परिवहन के साधन—बैल गाड़ी, ट्रक, रेलगाड़ी के डिब्बे आदि अनाज ढोने के साधनों के साथ कीट एक स्थान से दूसरे स्थान तक चले जाते हैं। पानी के जहाज द्वारा तो कीट एक देश से दूसरे देश तक भी पहुँच जाते हैं।

इनके अतिरिक्त यदि भण्डार में वायु संचालन के लिए बने हुए रोशनदानों पर जालियाँ नहीं लगी हों तो [illegible] सकता है। पक्षी तथा [illegible] कसकर बन्द नहीं [illegible] जाते हैं।

ग्रसन का संसूचन
(Detection of Infestation)

ग्रसन का परिमाणात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार की क्षतियों से सीधा सम्बन्ध है। ग्रसन के फलस्वरूप अनाज की मात्रा में कमी के साथ ही साथ उसकी गुणता में भी कमी आ जाती है। अतः ग्रसन का समय पर संसूचन आवश्यक है ताकि नियन्त्रण के उपाय समयानुसार किये जा सकें। बड़े-बड़े जन्तुओं का पता तो आसानी से लग जाता है, पर सूक्ष्म जीवाणुओं व अरूपी तथा कीटों की उन अवस्थाओं का जो अनाज के अन्दर रहती हैं, आसानी से पता नहीं लग पाता। सामान्य रूप से दिखाई देने वाले ग्रसन को आभासी ग्रसन तथा सामान्य रूप से दिखाई न पड़ने वाले छिपे हुए ग्रसन को प्रच्छन्न ग्रसन कहते हैं।

1. आभासी ग्रसन का संसूचन

भण्डार में पक्षी तथा चूहों का ग्रसन आसानी से उनके अनाज में मिले मल-मूत्र, बाल तथा पंख के टुकड़ों आदि को देखकर लगाया जा सकता है। परन्तु कीटों का ग्रसन इतनी आसानी से मालूम नहीं पड़ता है। उसका पता लगाने के लिए निम्नांकित विधियाँ हैं—

(i) अनाज को चालनी से छानकर—अनाज के अन्दर वर्तमान जीवित कीटों का पता बारीक जाली वाली चालनी से छानकर लगाया जा सकता है। छानते समय अनाज हिलने के कारण उसके अन्दर वाले कीड़े बाहर आ जाते हैं तथा चालनी के नीचे एकत्रित हो जाते हैं। लेकिन इस विधि से दानों के अन्दर कीटों की विकसित होने वाली अवस्थाओं का पता नहीं लगाया जा सकता तथा ठीक-ठीक परिमाणात्मक आकलन भी नहीं किया जा सकता।

(ii) भण्डार की दीवार, छत, फर्श आदि का निरीक्षण करके भी ग्रसन का पता लगाया जा सकता है। इन स्थानों पर कीड़े चलते-फिरते तथा छिद्रों व दरारों में छिपे हुए दिखाई दे सकते हैं।

(iii) बोरियों में रखे हुए अनाज में कीट बोरियों के बीच के खाली स्थान में देखे जा सकते हैं। इसके अलावा चूँकि बोरियों में ग्रसन का आरम्भ परिधि की ओर से होता है, अतः यहाँ देखकर भी ग्रसन का पता लगाया जा सकता है।

2. प्रच्छन्न ग्रसन का संसूचन

(i) निर्गम छिद्रों द्वारा—इस विधि में अनाज का एक प्रतिदर्श लेकर उसमें कीड़ों के निर्गम छिद्रों वाले दानों को गिन लिया जाता है। ऐसा अनुमान है कि यदि एक निर्गम छिद्रयुक्त दाना दिखाई देता है तो पाँच ऐसे दाने और होंगे जो कीट ग्रसित होने पर उनमें निर्गम छिद्र दिखाई नहीं देते। इस विधि में दानों को तोड़कर भी उनके अन्दर कीटों की विकासशील अवस्थाओं को देखा जा सकता है। सामान्य आँख से दिखाई न देने पर उन्हें सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जाता है।

(ii) ऊष्मायन (Incubation) द्वारा—इस विधि मे अनाज के एक प्रतिदर्श को लेकर उसे नियन्त्रित ताप व नमी पर शीशे के जार में रखा जाता है तथा उसमें से निकलने वाले कीटों को 24 घण्टे के अन्तर से देखा जाता है। कीट के जीवन-चक्र के अनुसार कम से कम 15 से 20 दिन तक अनाज को ऊष्मायन के लिए रखना पड़ता है, अतः इसमें समय अधिक लगता है।

(iii) कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा द्वारा—अनाज के अन्दर छिपे हुए कीटों के श्वसन के फलस्वरूप कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस बाहर निकलती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर होवे तथा ओक्सले ने सन् 1944 मे एक विधि प्रस्तावित की। इस विधि में अनाज के एक प्रतिदर्श में 24 घण्टे के दौरान उत्पन्न कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा को नाप कर ग्रसन का पता लगाया जा सकता है। इस गैस की सान्द्रता एक प्रतिशत से अधिक होने पर ग्रसन को गम्भीर माना जाता है तथा 0.3 प्रतिशत होने पर अनाज स्वस्थ समझा जाता है, लेकिन इस विधि की निम्नांकित समस्याएँ हैं—

(अ) मृत-कीटों की उपस्थिति का पता नहीं लग पाता।

(ब) नमी की मात्रा के कारण उत्पन्न हुई कार्बन-डाई-ऑक्साइड का पता नही लग पाता।

(iv) अभिरंजकों द्वारा (Staining Method) :

(अ) अम्लीय फुक्सिन अभिरंजक द्वारा—अनाज को अम्लीय फुक्सिन अभिरंजक में रखने पर दानों पर विद्यमान अण्ड चपक (Eggplug) गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। कीड़ों के खाने से बने छेद तथा अन्य यान्त्रिक क्षति का रंग हल्का गुलाबी हो जाता है। इस विधि में अनाज का एक प्रतिदर्श लेकर उसे 3 से 5 मिनट तक गुनगुने पानी में रखकर 2 से 5 मिनट तक अभिरंजक-घोल में रखा जाता है। इसके बाद उसे साधारण पानी से धोया जाता है, जिससे फालतू अभिरंजक धुल जाये और अण्ड-चपक आसानी से देखे जा सकें।

अभिरंजक-घोल निम्न प्रकार तैयार किया जाता है—

ग्लेसियल एसटिक अम्ल	50 मि० ली०
स्त्रावित जल	950 ,, ,,
अम्लीय फुक्सिन	0·50 ग्राम

(ब) जेन्शियन वायलेट अभिरंजक द्वारा—इस अभिरंजक-घोल में अनाज के दानों को लगभग दो मिनट तक रखने पर अण्ड चपक बैंगनी रंग के हो जाते हैं, जिन्हें आसानी से देखा जा सकता है। अभिरंजक बनाने की विधि इस प्रकार है—

जेन्शियम वायलेट का पानी मे एक प्रतिशत घोल	10 बूँद
95 प्रतिशत इथेनॉल	50 मि० ली०

(स) बर्बरीन सल्फेट प्रतिदीप्तिशील अभिरंजक द्वारा—इस विधि में 20 पी. पी एम. के बर्बरीन सल्फेट घोल मे दानों को एक मिनट तक भिगोया जाता है। इस प्रकार भीगे दानों को परा-बैंगनी रोशनी मे रखने पर अण्ड चपक गहरे पीले रंग की चमक पैदा करते हैं।

(द) आयोडीन अभिरंजक द्वारा—इस विधि मे अनाज का एक प्रतिदर्श आयोडीन के घोल मे रखा जाता है, जिससे दानो पर लगे अण्ड चपक भूरे रग के हो जाते हैं और आसानी से देखे जा सकते हैं।

(v) उत्प्लावन विधि (Floating Method)—दो भिन्न आपेक्षिक-घनत्व वाले द्रवो को मिलाने पर अधिक आपेक्षिक-घनत्व वाला द्रव नीचे तथा कम आपेक्षिक-घनत्व वाला द्रव ऊपर आ जाता है और दोनो के बीच में एक पर्त बन जाती है। इसी सिद्धान्त का उपयोग करके ह्वाइट (1956) ने एक विधि निकाली जिसके अन्तर्गत सोडियम सिलिकेट का घोल पानी में बना लिया जाता है जिसका आपेक्षिक-घनत्व 1 60 होता है। इस घोल मे मेथाइल क्लोरोफार्म मिलाया जाता है जिसका आपेक्षिक घनत्व 1.30 पर नियत होता है। इन द्रवो के मिश्रण मे अनाज का एक प्रतिदर्श डालने पर बहुत अधिक हल्के दाने जिनकी अधिकाश क्षति हो चुकी हो सबसे ऊपरी सतह पर तैरते हैं; उनसे कम हल्के दाने जिनमे क्षति कम हुई हो अथवा जो स्वाभाविक रूप से हल्के हो, बीच की पर्त पर तैरते हैं और सबसे भारी अर्थात् स्वस्थ दाने नीचे वाले द्रव मे डूब जाते हैं।

(vi) जिलेटिन विधि—इस विधि मे दानो को 10 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोक्साइड के घोल मे रखकर लगभग 10 मिनट तक उबाला जाता है, जिससे दाने अर्ध-पारदर्शक हो जाते हैं। इन दानों को घोल मे से बाहर निकालकर साधारण पानी से धो लिया जाता है। फलस्वरूप दानो के अन्दर विद्यमान कीट अपनी क्यूटिकल के कारण साफ-साफ दिखाई देने लगते हैं और गिने जा सकते है।

(vii) दले हुए दानों की उत्प्लावन विधि—इस विधि मे दानो का एक 100 ग्राम का प्रतिदर्श लेकर दल लिया जाता है, जिससे दाने टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इन दले हुए दानो मे 0.5 लीटर गरम पानी मिलाते है ताकि दाने अच्छी तरह भीग जाएँ। पुनः इसमे थोड़ा-सा मिट्टी का तेल डालकर उसे भली प्रकार हिलाते हैं। ऐसा करने पर कीडे तथा उनके शरीर के टूटे हुए भाग ऊपर तैरने लगते हैं। इनको एक अन्य फ्लास्क में अलग कर लिया जाता है। अब इन्हे एक मलमल के कपड़े से छानकर गिन लिया जाता है।

(viii) प्रक्षेपण विधि (Projection Method)—यह विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि कीट ग्रसित दाने हल्के तथा स्वस्थ दाने भारी होते हैं। अतः अनाज का एक प्रतिदर्श लेकर गिराने पर हल्के दाने पास से ही रहेगे तथा भारी दाने दूर तक जायेंगे क्योकि हल्के दानो में भारी दानो की अपेक्षा कम गति होती है। इस प्रकार कीट ग्रसित अर्थात् हल्के व भारी अर्थात् स्वस्थ दानो को अलग

करके गिन लिया जाता है। लेकिन इस प्रकार अलग करने में कुछ स्वाभाविक रूप से कमजोर, बिना कीट ग्रसित दाने भी कीट ग्रसित दानों के साथ आ सकते हैं तथा ऐसे दाने जिनमें ग्रसन अभी आरम्भ ही हुआ हो स्वस्थ दानों के साथ गिने जा सकते हैं।

(ix) निन हाइड्रिन विधि—इस विधि में 0.7 प्रतिशत निन-हाइड्रिन से उपचारित गीले फिल्टर पत्र की दो पर्तों के बीच अनाज का एक प्रतिदर्श रख दिया जाता है। फिर उन्हें एक ऐसी मशीन से होकर गुजारा जाता है जिससे दाने तथा उनके अंदर विद्यमान कीट कुचल जाते हैं। कुचले हुए कीटों के अंदर का एमिनो अम्ल जब निन हाइड्रिन के सम्पर्क में आता है तब फिल्टर पत्र पर गहरे बैंगनी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इन धब्बों को देखकर कीटों की संख्या का पता लगाया जा सकता है। जिस मशीन से इस विधि द्वारा ग्रसन ज्ञात किया जाता है उसे **साइमन निन हाइड्रिन मशीन** कहते हैं।

(x) ध्वनि द्वारा—अनाज के अंदर विद्यमान प्रौढ़ कीट तथा डिम्भकों द्वारा चलने-फिरने तथा खाने के कारण उत्पन्न ध्वनि द्वारा उनका पता लगाया जा सकता है। इसके लिए अनाज को एक ध्वनिरोधी कमरे में रखकर उसके पास एक माइक्रोफोन रख दिया जाता है। इस माइक्रोफोन का सम्बन्ध एक ध्वनि प्रवर्धक से होता है, ध्वनि प्रवर्धक को दोलन लेखी (Oscillograph) से जोड़ दिया जाता है। कीड़ों द्वारा उत्पन्न अत्यन्त धीमी आवाज भी प्रवर्धित होकर दोलन-लेखी तक पहुँचती है जो वहाँ पर रेखाओं द्वारा अंकित हो जाती है। इसे देखकर कीड़ों की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

(xi) एक्स (X) किरण द्वारा इसके अन्तर्गत अनाज के एक प्रतिदर्श का एक्स किरण मशीन द्वारा विकिरण—चित्र (radiograph) ले लिया जाता है। इस चित्र में दानों के अन्दर कीट व उनकी विकासशील अवस्थाएँ साफ-साफ दिखाई देती हैं। आज-कल कीट-ग्रसन ज्ञात करने के लिए विशेष रूप से तैयार की गई एक्स किरण इकाइयों (X-ray units) का उपयोग किया जाता है। हालाँकि यह मशीन काफी मँहगी है पर इससे ग्रसन का पता शीघ्रता से तथा ठीक-ठीक लगाया जा सकता है। मिलनर आदि (1950), पैडर्सन तथा ब्राउन (1960) तथा खरे व मिल्स (1968) ने इस विधि द्वारा प्रच्छन्न ग्रसन ज्ञात करने का कार्य किया।

(xii) फेरिक नाइट्रेट विधि—इस विधि द्वारा निर्गम छिद्रयुक्त दाने स्वस्थ दानों से अलग किए जा सकते हैं। इसके लिए पहले जलयोजित फेरिक नाइट्रेट का 2 प्रतिशत घोल तैयार किया जाता है। इस घोल में अनाज का एक प्रतिदर्श डालकर, दानों को अच्छी तरह भिगोने के लिए उसे लगभग 30 सैकिण्ड तक हिलाते हैं। ऐसा करने से निर्गम-छिद्रयुक्त दाने सतह पर आ जाते हैं और वे आसानी से गिने जा सकते हैं, इस विधि की खोज ऐप्ट (195:) ने किया।

(xiii) यूरिक अम्ल विधि—यूरिक अम्ल कीटों के उत्सर्ग का एक प्रमुख भाग है तथा यह प्रौढ़ कीट व डिम्भक दोनों के द्वारा उत्सर्जित होता है। केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसंधान (C. F. T. R I.) मैसूर द्वारा किए गए शोध कार्य से पता चला है कि कीट-ग्रसित अनाज में यूरिक अम्ल की मात्रा अधिक होती है तथा यह मात्रा कीड़ों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है। वेंकटराव आदि (1957) ने अनाज में यूरिक अम्ल की मात्रा के निर्धारण पर कार्य किया है।

(xiv) माल्टोज विधि—इस विधि में अनाज के अंदर माल्टोज की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। अनावश्यक रूप से अधिक माल्टोज की मात्रा अनाज की खराब अवस्था तथा कीट-ग्रसन का सूचक है।

(xv) वसा-अम्लता विधि—संचयन के दौरान आटे तथा क्षतिग्रस्त दानों में वसा-अम्लता बढ़ जाती है। जैलेन (1954) ने वसा-अम्लता तथा क्षति में सीधा सम्पर्क बताया है। पिगले आदि (1954) ने भी क्षतिग्रस्त अनाज की वसा अम्लता पर कार्य किया तथा पाया कि अधिक वसा अम्लता अधिक क्षतिग्रस्त दानों की सूचक है।

□□□

4

संचयन के दौरान क्षति एवं उसका आकलन

संचयन के दौरान अनाज को अनेक शत्रु-जीव हानि पहुँचाते है। कुछ तो पूरे दाने को खा जाते हैं तथा कुछ केवल जनन भाग को ही खाते हैं। इसके अलावा ये जीव अनाज के अन्दर अपना मल-मूत्र, उपचर्म, निर्मोक तथा बाल आदि मिलाकर उसे संदूषित कर देते हैं। इन क्रियाओं के फलस्वरूप अनाज में कई प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होते हैं तथा सूक्ष्म जीवाणुओं का आक्रमण भी बढ़ जाता है। फ्रीमैन (1957) ने संचयन के दौरान होने वाली क्षति का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उन्होने दो प्रकार की क्षति बताया है-1-आर्थिक क्षति—जिसमे अनाज के भार अथवा मात्रा में कमी हो जाती है, 2. जन स्वास्थ्य को क्षति—इसके अंतर्गत अनाज में होने वाले रासायनिक परिवर्तन तथा पोषक तत्वों में कमी आदि आते हैं जिसके फलस्वरूप अनाज मनुष्य के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी नही रहता। विकासशील देशों में आर्थिक क्षति ही विशेष महत्त्वपूर्ण है जबकि विकसित देशो में जनस्वास्थ्य की क्षति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भारतवर्ष मे शुद्ध भोजन कानून (Pure Food Act) बनने के बाद दोनो प्रकार की क्षतियाँ महत्त्वपूर्ण हो गई है। इनका अध्ययन सरलतापूर्वक दो भागों में किया जा सकता है—

(1) परिमाणात्मक क्षति (Quantitative loss) तथा

(2) गुणात्मक क्षति (Qualitative loss).

(1) परिमाणात्मक क्षति का आकलन

संचयन के दौरान अनाज मे हुई क्षति का आकलन करने से पूर्व अनाज के प्रतिदर्श को चलनी से छान लेना चाहिए अथवा निष्पावन द्वारा साफ कर लेना चाहिए जिससे ऐसी वस्तुएँ जो सही आकलन में बाधक सिद्ध हों निकल जाँय। इसके अतिरिक्त अनाज का एक आधारभूत प्रतिदर्श लेकर उसमे नमी की मात्रा ज्ञात कर लेना चाहिए क्योंकि संचयन के दौरान अनाज मे नमी की मात्रा घट या बढ़ सकती है।

कीट, वरूथी तथा सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा की गयी क्षति का आकलन

गणना तथा तौल विधि

इस विधि मे अनाज का प्रतिदर्श ले लिया जाता है तथा उसके दानों को स्वस्थ तथा क्षतिग्रस्त दो भागों में अलग कर लिया जाता है। प्रत्येक संवर्ग के दानो को गिन कर उनको तौल लिया जाता है। प्रतिशत क्षति निम्नलिखित फार्मूले से ज्ञात की जाती है।

$$\text{भार में प्रतिशत क्षति} = \frac{(UNd) - (DNu)}{U\,(Nd - Nu)} \times 100$$

जबकि,

U = स्वस्थ दानों का भार
Nu = स्वस्थ दानों की संख्या
D = क्षतिग्रस्त दानो का भार
Nd = क्षतिग्रस्त दानो की संख्या

इस विधि द्वारा सूक्ष्म जीवाणु, कीट वरूथी आदि द्वारा की गयी क्षति का आकलन किया जा सकता है। यदि क्षति अधिक हो गयी हो अथवा क्षति-आकलन के अच्छे साधन न हो तो यह विधि उपयुक्त रहती है।

इस विधि की कमी यह है कि (1) इसमे प्रच्छन्न ग्रसन का पता नहीं लग पाता तथा ऐसे दानो को भी जिनमें प्रच्छन्न ग्रसन होता है तथा जिनका भार कम हो चुका होता है, स्वस्थ दानों के अन्तर्गत गिन लिया जाता है।

(2) यदि कीटों की बड़े अथवा छोटे दानो के प्रति भोजन-सम्बन्धी कोई प्राथमिकता हो तो भी इस विधि द्वारा गलती होने की सम्भावना रहती है।

परिवर्तित प्रतिशत-क्षति विधि

इस विधि मे अनाज का एक प्रतिदर्श लेकर उसमे वर्तमान कुल दानो की तथा क्षतिग्रस्त दानों की संख्या ज्ञात कर ली जाती है तथा उसे प्रतिशत के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। अब प्रतिशत क्षति को रूपान्तरण गुणक की सहायता से भार मे कमी मे बदल दिया जाता है। इस विधि द्वारा आकलन शीघ्र होता है तथा किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन इस प्रकार केवल उन्ही कीटों की क्षति का आकलन किया जा सकता है जिनके निर्गम-छिद्र दानो पर स्पष्ट दिखाई देते हों।

क्षतिग्रस्त दानो का प्रतिशत निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

$$\text{निर्गम छिद्रयुक्त दानों का प्रतिशत} = \frac{\text{निर्गम छिद्रयुक्त दानों की संख्या}}{\text{प्रतिदर्श में कुल दानो की संख्या}} \times 100$$

संख्या के आधार पर क्षतिग्रस्त दानो की प्रतिशत के द्वारा भार मे क्षति ज्ञात करने के लिए उस संख्या को रूपान्तरण गुणक (C) से भाग दे दिया जाता है।

रूपान्तरण गुणक (C) ज्ञात करने के लिये 100 से 1000 दानों का एक यादृच्छिक प्रतिदर्श लेना चाहिए जिसमें 10% अथवा इससे अधिक क्षतिग्रस्त दाने हों। भार में प्रतिशत की कमी को गणना और तौल विधि द्वारा ज्ञात करके रूपान्तरण गुणक निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है—

$$\text{रूपान्तरण गुणक (C)} = \frac{\text{निर्गम छिद्रयुक्त दानो की संख्या}}{\text{भार म प्रतिशत कमी}}$$

भारतीय अन्न संचयन संस्थान, हापुड के डॉ. कृष्णा मूर्थी ने सन् 1975 में अनाज में क्षति का आकलन करने के लिए निम्नलिखित सूत्र दिया—

$$\text{प्रतिशत क्षति } (L) = (W+G) - \frac{100}{S}(W_1+G_1)$$

जबकि—L = प्रतिशत क्षति

W = प्रतिदर्श में घुने हुए दानों की प्रतिशत संख्या।

G = प्रतिदर्श में जनन भाग खाये हुए दानो की प्रतिशत संख्या।

S = 100 स्वस्थ दानों का भार (ग्राम में)

W_1 = W दानों का भार (ग्राम मे)

G_1 = G दानों का भार (ग्राम मे)

इस सूत्र द्वारा घुने हुए अनाज में क्षति का आकलन आसानी से किया जा सकता है।

पक्षियों द्वारा की गयी क्षति का आकलन

पक्षियों द्वारा की गयी क्षति का आकलन करने का सबसे अच्छा तरीका है कि अनाज को संचयन के पूर्व तथा बाद मे तोल लिया जाय। दोनों भारों का अन्तर क्षति होगी। लेकिन इस प्रकार क्षति का आकलन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

1. अनाज मे नमी की मात्रा के कारण भार मे कितनी कमी या वृद्धि हुई।
2. अनाज को किन-किन जातियों के पक्षी क्षति पहुँचाते हैं तथा वे कितने समय तक नुकसान पहुँचाते हैं।
3. अनाज को दूसरे अन्य कारकों द्वारा तो क्षति नही हुई।

चूहों द्वारा की गयी क्षति का आकलन

संचित अनाज मे चूहों द्वारा की गयी क्षति का सही आकलन करना कठिन होता है। इसका प्रमुख कारण है कि पक्षियो द्वारा क्षति, अनाज-का इधर-उधर बिखरना तथा गोदामों से चोरी, छिपे अनाज गायब होने आदि को चूहो की क्षति से अलग करना कठिन होता है। सही आकलन के लिए चूहों का रहन-सहन, व्यवहार तथा अन्य पारिस्थितिक ज्ञान का होना आवश्यक है। चूहो द्वारा क्षति के आकलन की अग्र-लिखित विधियाँ हैं—

1. जैव-भार विधि—इस विधि में किसी समुचित पाश द्वारा विभिन्न जातियों के चूहों को पकड़ लिया जाता है। पुनः इन चूहों को शरीर-भार के आधार पर दो संवर्गों में बाँट लिया जाता है। प्रथम—50 ग्राम तथा इससे कम और द्वितीय 50 ग्राम से अधिक। इसके बाद विभिन्न प्रजातियों के चूहों का जैव-भार ज्ञात कर लिया जाता है। विभिन्न चूहा प्रजातियों द्वारा की गयी क्षति का आकलन करने के लिए प्रत्येक संवर्ग के चूहों के जैव-भार को उस कारक से गुणा कर दिया जाता है जो उस भार संवर्ग के एक चूहे द्वारा प्रतिदिन खाये जाने वाले अन्न की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार प्राप्त दानों की संख्याओं को जोड़ दिया जाता है। इसे पूर्ण मात्रा अथवा प्रतिशत में व्यक्त किया जा सकता है।

जहाँ तक सम्भव हो सके प्रत्येक भार संवर्ग के चूहों के लिए प्रतिदिन खाये जाने वाले अन्न की मात्रा को शरीर-भार के आधार पर ज्ञात करना चाहिए। इसे ज्ञात करने के लिए चूहों को प्रयोगशाला में पिंजरों में रखकर उन्हें पर्याप्त मात्रा में अनाज देना चाहिए। यदि प्रयोगशाला की सुविधा नहीं हो तो प्रति चूहा खाये जाने वाले अन्न की मात्रा को इस कल्पना के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है कि 50 ग्राम शरीर भार से अधिक संवर्ग का चूहा अपने शरीर-भार का 7% अनाज खाता है तथा 50 ग्राम शरीर-भार से कम संवर्ग का चूहा अपने शरीर-भार का 15% अनाज खाता है। इस विधि से चूहों द्वारा खाये गये अनाज की मात्रा का आकलन A तथा B दो अलग-अलग शरीर-भार संवर्ग के लिए निम्न प्रकार किया जा सकता है—

क्षति की मात्रा = (0 07 a + 0 15 b) ग्राम

जबकि—

a = A जाति के चूहों का जैव-भार जिनका शरीर-भार 50 ग्राम से अधिक है तथा

b = B जाति के चूहों का जैव-भार जिनका शरीर-भार 50 ग्राम से कम है।

इस प्रकार उस गोदाम में प्रत्येक जाति के चूहों द्वारा प्रतिदिन खाये गये अनाज की मात्रा को ज्ञात कर तथा सबको जोड़कर समस्त चूहों द्वारा खाये गये अनाज का आकलन किया जा सकता है। इस क्षति को पूर्ण मात्रा अथवा प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

इस प्रकार किया गया आकलन तब अधिक सही होता है जब चूहों की संख्या स्थिर तथा उसका अनुमान सही हो।

चूहों की संख्या का आकलन करने की लिंकन-पीटर्सन विधि

इस विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम चूहों का एक प्रतिदर्श (Sample) जीवित पकड़ा जाता है। इन चूहों को रंग से चिह्नित कर दिया जाता है। पुनः उन्हें चूहों की प्राकृतिक संख्या (Natural population) में मिलने के लिए छोड़ दिया जाता है। दुबारा चूहों को पकड़कर फिर प्रतिदर्श लिया जाता है। इस समय हमारी यह

संकल्पना होती है कि चिह्नित चूहों के प्रतिदर्श में चूहों की कुल संख्या से वही अनुपात होगा जो पहले प्रतिदर्श में पकड़े गए चूहो की संख्या का उस स्थान पर पाए जाने वाले चूहों की कुल प्राकृतिक संख्या (Natural population) से था।

चूँकि आरम्भ में पकड़े तथा चिह्नित कर छोड़े गए चूहो की संख्या ज्ञात है तथा दूसरे प्रतिदर्श में पकड़े गए चूहों की संख्या का अनुपात भी ज्ञात है, अतः चूहों की कुल संख्या की गणना आसानी से निम्नांकित सूत्र से की जा सकती है—

$$P = an/r$$

जबकि P = चूहों की कुल संख्या

a = आरम्भ मे चिह्नित कर छोड़े गए चूहों की संख्या

n = दूसरी बार पकड़े गए चूहों की कुल संख्या

तथा r = दूसरी बार में पकड़े गये चिह्नित चूहों की संख्या।

क्षति का आकलन करने के लिए पृथक-पृथक जाति के चूहों की संख्या का आकलन भी पृथक पृथक किया जाता है। यदि किसी विशेष जाति के चूहों की संख्या का आकलन, उस जाति के चूहों की संख्या आरम्भ मे 20 से कम होने के कारण, असंतोषजनक हो तो एक से अधिक जातियों के चूहों की संख्या को एक साथ मिलाया जा सकता है।

2. **गुणात्मक क्षति**—संचयन के दौरान विभिन्न जैव तथा अजैव कारकों के प्रभाव से अनाज खराब हो जाता है। उसमे खट्टी-सी बदबू आने लगती है तथा पोषक तत्वों की भी क्षति होती है; यह अनाज मनुष्य के उपयोग के योग्य नही रह जाता। इस प्रकार की क्षति को गुणात्मक क्षति कहते हैं, जो निम्न प्रकार की होती हैं—

(अ) प्रोटीन की क्षति—सामान्य परिस्थितियों में संचयन करने पर प्रोटीन की मात्रा में कोई कमी नही होती लेकिन कीट ग्रसित अनाज मे प्रोटीन की मात्रा में कमी हो जाती है। खरे (1972) ने बताया कि कीटो के खाने से मक्का तथा गेहूँ में भार की एक इकाई की हानि होने पर प्रोटीन की हानि क्रमशः 1·67 व 0·44 इकाई हो जाती है। कहीं-कही पर संचयन के दौरान कीट-ग्रसन के परिणामस्वरूप प्रोटीन में वृद्धि की भी सूचना है। यह वृद्धि सम्भवतः संचित अनाज द्वारा कीटों के मूत्र के अवशोषण के कारण होती है। ऐसा पाया गया है कि भ्रूणपोष क्षतिग्रस्त दानो में प्रोटीन की क्षति कम तथा जर्म क्षतिग्रस्त दानो मे अधिक होती है। खरे (1972) ने 10·56 प्रतिशत कीट ग्रसन होने पर गेहूँ के भ्रूणपोष तथा जर्म क्षतिग्रस्त दानों मे क्रमशः 11·35 तथा 24·90 प्रतिशत प्रोटीन की क्षति पाई।

(ब) कार्बोहाइड्रेट की क्षति—प्रायः 14 प्रतिशत या इससे अधिक नमी वाले संचित अनाज में भार की कमी के साथ-साथ स्टार्च तथा शर्करा की मात्रा मे भी कमी हो जाती है। लेकिन कभी-कभी संचयन के दौरान अनाज के शुष्क भार मे वृद्धि भी हो जाती है। यह वृद्धि स्टार्च के जल अपघटन (Hydrolysis) के समय

होने वाली अभिक्रियाओं में जल का व्यय होने के कारण होती है। मिल्नर तथा गिद्दिस (1946) ने तापन क्रिया (Heating process) के फलस्वरूप सोयाबीन में शर्करा की मात्रा में कमी तथा अनअपचायी शर्करा (Non-reducing sugar) में वृद्धि बताया। इसके अतिरिक्त अनाज में नमी की अधिकता होने पर कार्बोहाइड्रेट का किण्वन (fermentation) होने से अल्कोहॉल बनता है, जिससे अनाज में खट्टी गंध आने लगती है।

(स) वसा में परिवर्तन—वसा के ऑक्सीकरण के कारण संचित अनाज में एक प्रकार का खट्टा स्वाद तथा गंध पैदा हो जाती है। इसके अलावा जल अपघटन (Hydrolysis) की क्रिया के फलस्वरूप मुक्त वसा अम्ल बन जाते हैं। परन्तु अनाज में कुछ सक्रिय प्रति ऑक्सीकारक विद्यमान होते हैं जिनके कारण दानों में संचित वसा वायुमण्डलीय ऑक्सीजन के प्रभाव से मुक्त रहती है और खट्टी गंध की समस्या कम होती है। तापमान तथा नमी में अधिकता के कारण वसा में परिवर्तन अधिक होता है। फफूँदी लग जाने पर भी वसा में परिवर्तन अधिक तीव्र गति से होता है ऐसा पाया गया है कि वसा का जल अपघटन प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट की तुलना में अधिक होता है। पर वसा में परिवर्तन के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता है कि वसा की अम्लता बढ़ने से पोषक तत्वों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। केवल अनाज में खट्टी गंध आ जाती है और वह स्वादिष्ट नहीं रह जाता। खरे (1968–69) ने संचयन के दौरान स्वाद तथा गंध की दृष्टि से अनाज में गुण ह्रास पर काम किया तथा बताया कि वसा अम्लता बढ़ने से स्वाद के अतिरिक्त अंकुरण क्षमता भी कम हो जाती है।

(द) विटामिनों में परिवर्तन—संचयन के दौरान अनाज में होने वाली विटामिन की क्षति पर नमी तथा ताप का अधिक प्रभाव पड़ता है। वेफील्ड तथा ओडोनेल (1945) ने पाया कि 5 माह के सचयन काल मे 17 प्रतिशत तथा 12 प्रतिशत नमी वाले गेहूँ के दानो मे क्रमश: 30 प्रतिशत तथा 12 प्रतिशत थायमीन की कमी हुई। धान में भी 10 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर थायमीन की काफी कमी होती है। इसी प्रकार पीली मक्का में भी संचयन के दौरान विटामिन ए की मात्रा में क्षति पायी गयी है। फ्रैप्स तथा कैमेरर (1937) के अनुसार एक वर्ष से अधिक समय तक संचित मक्का में 70 प्रतिशत तक विटामिन ए की हानि होती है।

(य) खनिज में परिवर्तन—साधारणतया संचयन के दौरान अनाज में वर्तमान खनिजों में कोई कमी नहीं होती लेकिन मायमन तथा रिहान (1938) ने बताया कि सिलीनियम युक्त मिट्टी मे उगायी गयी फसल के दानों मे सिलीनियम की मात्रा में 73 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

□□□

5
संचयन विधियाँ

अनाज संचयन की दो प्रमुख विधियां है—1. बोरी मे भरकर तथा 2. ढेर के रूप में, जिसे विपुल आयतन संचयन कहते हैं।

(1) बोरी में अनाज संचयन—बोरी में भरकर अनाज संचयन की प्रथा बहुत पुरानी है। घरो में अपने उपभोग के लिए प्रायः बोरियों मे भरकर अनाज संचित किया जाता है। इसके अलावा भारतीय खाद्य निगम तथा भण्डार निगमो द्वारा भी गोदामों मे बोरियों मे भरकर अनाज संचित किया जाता है। बोरी में अनाज संचयन से निम्न लाभ व हानियां हैं—

लाभ

(i) बोरी मे भरकर अनाज सचित करने मे अनाज के रखने तथा निकालने में सुविधा रहती है।

(ii) अनाज का निरीक्षण तथा हिसाब-किताब करने मे आसानी रहती है।

(iii) ग्रसन का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

(iv) अलग-अलग प्रकार के अनाज का प्रधूमन सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

(v) प्रायः प्रारम्भिक लागत व्यय कम लगता है।

हानि

(i) संचयन के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है तथा गोदाम की संचयन क्षमता का 50–60 प्रतिशत ही उपयोग हो पाता है।

(ii) कीट-ग्रसन की सम्भावना अधिक रहती है तथा कीट-ग्रसन शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है।

(iii) बोरियो को भली प्रकार सुरक्षित रखने के लिए एक अच्छा गोदाम आवश्यक है।

(iv) लम्बी अवधि तक संचयन सम्भव नही हो पाता।

अच्छे गोदाम के गुण

(i) इसमे संचित वस्तु नमी, बरसात, खराब गन्ध, नाशी जन्तु, हवा, आग तथा चोरी से सुरक्षित रहनी चाहिये।

(ii) वस्तु रखने, निकालने, प्रतान मुक्त रखने, निरीक्षण तथा सफाई करने की पूरी सुविधा होनी चाहिए।

(iii) गोदाम अनाज की मण्डी के पास तथा रेलवे व सड़क यातायात से जुड़ी होनी चाहिए।

(iv) इसके पास पीने के पानी, आवास तथा कार्यालय की सुविधा होनी चाहिये।

(v) यह कूड़ा-करकट फैंकने की जगह, डेयरी फार्म, मुर्गीखाना, बूचड़-खाना, फैक्टरी, पैट्रोल-पम्प आदि से कम से कम 500 मीटर की दूरी पर होना चाहिए।

(vi) यह आवासीय क्षेत्र से दूर होनी चाहिये तथा इसके आस-पास वृक्ष नहीं होने चाहिये, क्योंकि वृक्षों की जड़ से गोदाम की नींव को खतरा रहता है।

(vii) गोदाम में वायु सचरण की पूर्ण सुविधा होनी चाहिये।

(viii) गोदाम ऊँची जगह पर स्थित होना चाहिए तथा जल-निकास की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ix) गोदाम के विस्तार के लिए पास में आवश्यक जमीन खाली रहनी चाहिए।

भारतीय मानक यू० डी० सी० 6331 तथा आवासीय परियोजना नियोजन समिति प्रतिवेदन में गोदाम बनाने के लिए आवश्यक निर्देश दिये गये हैं।

गोदाम में बोरी रखने की विधि

गोदाम में बोरियाँ रखने से पूर्व फर्श पर लकड़ी की एक पर्त बिछा दी जाती है जो करीब 10–12 से०मी० मोटी होती है। यदि लकड़ी उपलब्ध न हो तो पालीथीन की चादर की एक पर्त अथवा चटाई की दो-तीन पर्त बिछाकर बोरियों को रखा जा सकता है। ऐसा करने से बोरियों का सीधा सम्पर्क फर्श से नहीं रहता, जिसके कारण नमी व नाशी जीवों से सुरक्षा होती है तथा हवा का परिसंचरण भी सुचारु रूप से होता है। लकड़ी की पाटियों के ऊपर पालीथीन की चादर अथवा चटाई बिछाकर रखना और भी अच्छा होता है।

बोरियों को एक-दूसरे के ऊपर पर्त के रूप में रखा जाता है। इसे चट्टा (*Stacking*) कहते हैं। चट्टा लगाने के लिए गोदाम की फर्श को बराबर नाप के आयताकार अथवा वर्गाकार भागों में बाँट लिया जाता है। विभाजन रेखाएँ सफेद अथवा काले रंग से बनाई जाती हैं, जिनकी चौड़ाई 5 से.मी. होती है। इस प्रकार बनाये गये भागों को एक ओर से रेखांकित कर लिया जाता है। इन भागों के आपस में, दीवार तथा खम्भों के बीच में लगभग 75 से. मी. चौड़ी जगह छोड़ दी जाती है। इससे आने-जाने में सुविधा रहती है तथा हवा का सचरण भी भली प्रकार होता है। इन आपसी दूरियों के अलावा गोदाम के अन्दर चट्टों के बीच में आने-जाने के लिए मुख्य रास्ते भी होते हैं, जिनकी चौड़ाई एक मीटर होती है।

चट्टे के धरातल की नाप 9×6 मीटर होनी चाहिए। इसकी ऊँचाई अपनी सुविधा के अनुसार रखी जा सकती है। लेकिन चट्टा तथा छत के बीच कम से कम 1 से $1\frac{1}{2}$ मीटर का खाली स्थान होना चाहिये। चट्टा निम्न प्रकार का होना है—

(i) साधारण चट्टा (Simple Stacking) (चित्र 24)—इस विधि में बोरियों को एक-दूसरे के ऊपर एक ही दिशा मे रखा जाता है। इसकी कमी यह है कि इस
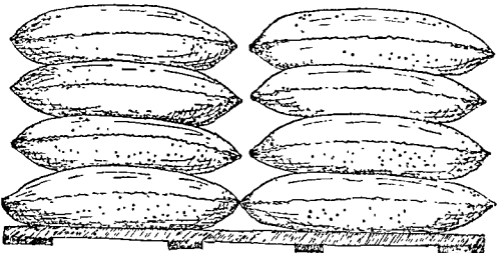
चित्र 24. साधारण चट्टा

प्रकार ऊँचा चट्टा नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि बोरियों के गिरने का डर रहता है।

(ii) अनुप्रस्थ चट्टा (Cross Stacking) (चित्र 25)—इस विधि मे बोरियों की एक कतार यदि लम्बाई मे रखी जाती है तो दूसरी उसके ऊपर चौड़ाई मे रखी जाती है। इस प्रकार नियमबद्ध रूप से लम्बाई और चौड़ाई मे बोरियो की कतारें रखकर ऊँचा चट्टा बनाया जा सकता है। ऐसा चट्टा काफी मजबूत होता है तथा बोरियों के गिरने का डर नही रहता।

(iii) खण्ड चट्टा (Block Stacking)—इस विधि में प्रत्येक कतार मे बोरियो को लम्बाई तथा चौड़ाई की दिशा मे एक-दूसरे के ऊपर रखा जाता है तथा आस-पास के चट्टो की कतारो मे यह नियम बदल दिया जाता है। यदि एक चट्टे की एक कतार मे बोरियाँ लम्बाई में रखी गई हैं तो उसके पास के चट्टे में उस स्तर की कतार में बोरियाँ चौड़ाई में रखी जाती हैं। इस प्रकार बनाया गया चट्टा काफी मजबूत होता है तथा इसमे से बोरियां हटाने पर भी यह टूटता नही है एवं बोरियो की गणना भी आसानी से की जा सकती है। चट्टा बनाते समय अग्रांकित बातों का ध्यान रखना चाहिये—
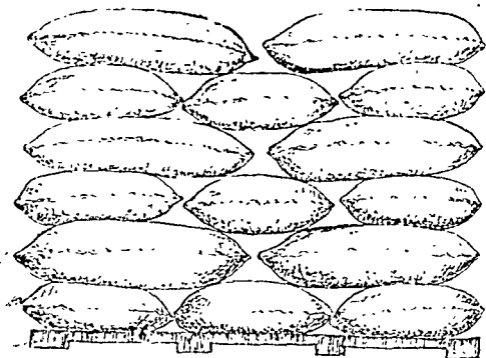
चित्र 25 अनुप्रस्थ चट्टा

(i) चट्टे (Stack) की ऊँचाई इतनी होनी चाहिये कि उसके ऊपर जो खाली स्थान हो उससे हवा का संचरण समुचित रूप से हो सके तथा कार्यरत कर्मचारियों को उसके ऊपर से आने-जाने में कोई असुविधा न हो। साधारणत: चट्टे की ऊँचाई एक से पाँच मीटर तक होती है।

(ii) बोरियों का मुँह बाहर की ओर नहीं होना चाहिये।

2. विपुल आयतन संचयन (Bulk Storage)—विपुल आयतन अथवा ढेर में अनाज संचयन की प्रथा अपने देश में बहुत पुरानी है। प्राय: अधिक समय तक संचित किये जाने वाले अनाज को ढेर में तथा कम समय तक संचित किये जाने वाले अनाज को बोरियों मे भरकर रखा जाता है। इस प्रकार संचयन की निम्नांकित अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं—

अच्छाइयाँ

(i) अन्य साधनों से कीट ग्रसन की सम्भावना कम रहती है।

(ii) कीट ग्रसन होने पर प्रधूमन आसानी से और कम खर्च में किया जा सकता है।

(iii) बरसात के दिनो में बाह्य पर्यावरण की नमी का कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता।

(iv) चूहों के आक्रमण की सम्भावना कम रहती है।
(v) संचयन के लिए अपेक्षाकृत कम स्थान की आवश्यकता होती है तथा भण्डार की पूरी क्षमता का उपयोग हो पाता है।
(vi) बोरियों पर होने वाले व्यय में बचत होती है।
(vii) रख-रखाव का खर्च कम लगता है।
(viii) लम्बी अवधि तक सुरक्षित भण्डारण सम्भव है।
(ix) यांत्रिक क्रियाएँ आसानी से संभव है।

बुराइयाँ

(i) एक बार ग्रसन होने पर पूरे अनाज मे फैल जाता है तथा क्षति अधिक होती है।
(ii) अनाज में नमी अधिक होने पर पूरे अनाज में अधिक हानि होने का डर रहता है।
(iii) चावल, आटा, मैदा, सूजी आदि को ढेर में अधिक समय तक संचित नहीं किया जा सकता।

विपुल आयतन संचयन की प्रमुख विधियाँ

(अ) ग्रामीण (Indigenous) **विपुल आयतन सचयन**—अपने देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से ही निम्न प्रकार के संचयन पात्रों में अनाज सचयन होता था, इनमे से कुछ को भारतीय मानक का स्तर भी दे दिया गया है। ये रचनाएँ मुख्य रूप से दो भागों मे बाँटी जा सकती है।

(1) भूमिगत तथा (2) भूमोपरि

1. भूमिगत रचनाएँ—इस प्रकार की रचनाओं के विभिन्न राज्यो में अलग-अलग नाम होते है, पर मूल रूप से सब एक जैसी ही होती हैं। भूमिगत रचनाएँ उन्हीं स्थानों पर बनाई जा सकती हैं जहां भूमिगत पानी का स्तर बरसात के दिनो में भी काफी नीचे रहता हो।

(i) खत्ती—यह नाम उत्तर प्रदेश तथा पंजाब मे प्रचलित है, यह एक प्रकार का भूमिगत कोठिला है जिसका घेर पेंदे की ओर अधिक तथा ऊपर की ओर कम (लगभग 0.75 मीटर) होता है। इसमें ऊपर एक छेद होता है जिससे अनाज भरा जाता है, इसकी गहराई लगभग 5 मीटर होती है। अनाज भरने से पहले इसके पेंदे में तथा दीवार के अन्दर की ओर गेहूँ अथवा धान के डंठल की एक पर्त जमा दी जाती है जिससे बाह्य पर्यावरण की नमी अन्दर नही आ पाती।

(ii) बांडा—इसका घेर नीचे से ऊपर तक समान होता है, इसकी गहराई लगभग 4·75 मीटर होती है पर इसका घेर/व्यास प्रायः गहराई से अधिक होता है। ऐसी रचनाएं मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों मे प्रचलित है।

(iii) पेव—तामिलनाडू, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों जैसे शोलापुर पूना, सतारा, अहमदनगर आदि क्षेत्रों में खत्ती जैसी भूमिगत रचनाओं को पेव कहते है। अधिक मात्रा मे अनाज संचयन के लिए इन्हें उपयोग मे लिया जाता है। इनकी भण्डारण क्षमता 200 से 450 क्विंटल होती है। अनाज भरने के बाद इनका मुँह गीली मिट्टी से बन्द कर दिया जाता है।

(iv) तालघर—भूमिगत रचना का यह नाम आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, तथा गुजरात के कुछ भागों मे प्रचलित है। इसमे एक ढक्कन जैसा कपाट होता है जिससे अनाज भरने तथा निकालने का काम लिया जाता है।

(v) खाई—यह नाम राजस्थान के कुछ भागो मे प्रचलित है, यह एक कूप के आकार की होती है जिसकी गहराई 5.5 से 6.0 मीटर होती है। इसकी दीवार को ककरीट तथा पत्थर से बनाकर सीमेन्ट से प्लास्टर कर दिया जाता है। इसका घेर नीचे की ओर 3·65 मीटर तथा ऊपर 0·6 से 1.0 मीटर होता है। लगभग तीन-चौथाई ऊँचाई तक इस रचना का घेर समान होता है तथा उसके बाद धीरे-धीरे पतली हो जाती है। इसकी दीवार में अन्दर की ओर घुमावदार रूप में, पत्थर के टुकड़े लगे होते हैं जो अन्दर जाने के लिए सीढियो का काम करते है। इसमे अनाज भरकर इसके मुँह पर गेहूँ के डंठल बिछा दिए जाते हैं तथा उनके ऊपर पत्थर के टुकड़े जमाकर मुँह को गीली मिट्टी से बन्द कर दिया जाता है।

भूमिगत रचनाओं की कमियाँ

(i) इनमे बाहर से नमी के समावेश का बहुत डर रहता है।

(ii) बरसात के दिनो मे चूहों के बिलो द्वारा इनके अन्दर पानी जाने का डर रहता है।

(iii) इनमे अनाज आसानी से भरा तथा निकाला नही जा सकता है।

भूमिगत रचनाओं मे अनाज सचयन की प्रथा अब बहुत कम रह गयी है अथवा समाप्त सी हो गयी है।

2. भूमोपरि रचनाएँ

(i) कच्चा कुठला (चित्र 26)—यह गोल, वर्गाकार अथवा आयताकार होता है; इसे मिट्टी, गोबर, भूसा, सूखी घास आदि मिलाकर बनाया जाता है। सबसे पहले कुठले का पेंदा बना लिया जाता है। उसके बाद थोड़ा-थोड़ा करके इसकी दीवारों का निर्माण किया जाता है। दीवार की मोटाई 2.4 से 4·00 सेन्टीमीटर होती है। इसके ऊपर एक मुँह होता है जिसे अनाज भरने के बाद बन्द कर दिया जाता है। अनाज निकालने के लिए पेंदे के पास दीवार में लगभग 5 से मी. व्यास का एक छेद होता है, इसकी ऊँचाई 1 से 4 5 मीटर तथा भण्डारण क्षमता 10 से 80 क्विंटल तक होती है। यह पाएदार अथवा बिना पाएदार दोनों प्रकार का होता है। ऐसी रचनाएँ उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, पंजाब, बिहार आदि प्रान्तों मे प्रचलित हैं। राजस्थान मे इसे बुखारी अथवा पिंडारा कहते हैं।
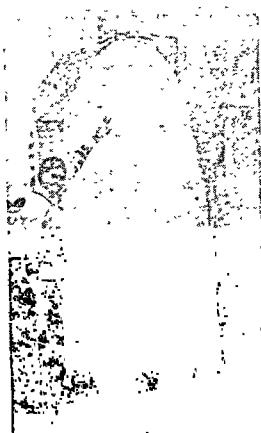
चित्र—26. कच्चा कुठला

(ii) पक्का कुठला (चित्र 27 क, ख)—यह एक पक्के कमरे के समान होता है जिसे अपनी आवश्यकता के अनुसार कई भागों में बाँट लिया जाता है। कच्चे कुठले की ही भाँति इसमें भी अनाज भरने के लिए ऊपर से तथा निकालने के लिए नीचे से व्यवस्था होती है। इसकी भण्डारण क्षमता 10 से 200 क्विंटल तक होती है।

अनाज निकालने के बाद प्रायः कुठलों की सफाई ठीक तरह से नहीं हो पाती अत. यदि पूर्व संचित अनाज कीट ग्रसित है तो भविष्य में संचित किए जाने वाले अनाज मे भी कीट ग्रसन की सम्भावना रहती है।

(iii) कंडा—यह बास की बनी हुई छोटी, गोल अथवा चौकोर रचना होती है। इसे मिट्टी से लेप दिया जाता है ताकि कोई छिद्र खुला न रह जाय। इसके ऊपर बाँस का ही बना ढक्कन होता है। इसकी भण्डारण क्षमता 0·5 से 10 0 क्विंटल तक होती है, इसका उपयोग पर्वतीय क्षेत्रो मे छोटे किसानो द्वारा अधिक किया जाता है।

(iv) मुरई—मुरई बनाने के लिए पहले एक मिट्टी का गोल आधार बनाते हैं। उसके ऊपर धान की पयाल रख देते है, अब पयाल की ही रस्सी की गोलाकार रचना ऊपर तक बनाते हैं। रस्सी बहुत घनी और पास-पास होती है इसके ऊपर

घास फूस की ढलवाँ छत बनाई जाती है । इस प्रकार की रचनाओं का उपयोग बिहार तथा दक्षिण भारत में धान के भण्डारण के लिए अधिक किया जाता है। इसकी भण्डारण क्षमता 10 से 30 क्विंटल होती है ।
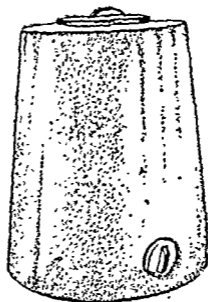
चित्र 27 क पक्का कुठला
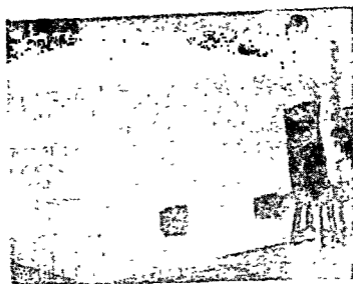
चित्र—27 ख पक्का कुठला

(v) पूरा (चित्र 28)—इसका निर्माण मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर के डंठल तथा धान की पयाल का मदद से किया जाता है, यह आकार मे मुरई जैसा
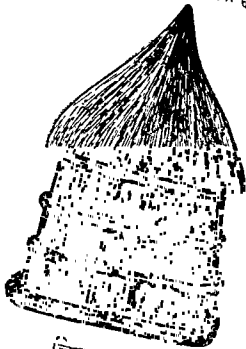
चित्र 28 पूरा

ही होती है। उत्तरी भारत में इसे पूरा कहा जाता है। इसका उपयोग धान रखने के लिए अधिक किया जाता है, इसकी भण्डारण क्षमता 1.5 से 250 क्विटल तक होती है।

(vi) टिन का ड्रम—घरों में अनाज के भण्डारण के लिए टिन के बने ड्रमों का उपयोग किया जाता है। इसके ऊपर टिन का ही ढक्कन लगा दिया जाता है।

(vii) मटका (चित्र 29 क, ख)—थोड़ी मात्रा मे घरेलू उपयोग के लिए अनाज विशेषकर चावल, दलहन, तिलहन आदि रखने के लिए मिट्टी के पके हुए मटको का उपयोग किया जाता है। इसके मुँह को मिट्टी के बने ढक्कन से गीली मिट्टी लगाकर बन्द कर दिया जाता है।

विपुल आयतन संचयन के लिए उन्नत किस्म की वैज्ञानिक रचनाएँ—भण्डारण के लिए उपयोग में लाई जाने वाली ग्रामीण, अवैज्ञानिक रचनाओ मे अनाज की क्षति अधिक होती है। अतः उन्नत किस्म की वैज्ञानिक रचनाओ का विकास हुआ है, जिनमे अनाज को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है इसके अलावा इसमे अनाज रखने, निकालने तथा धूमन आदि की भी सुविधा होती है। ये रचनाएँ प्रदर्शित हैं—
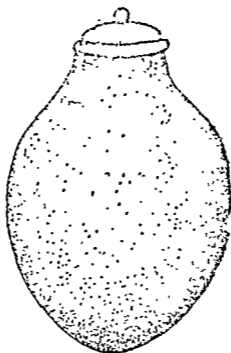
चित्र 29 क मटका

चित्र—29. ख भंडारण के लिए प्रयुक्त मटके

(i). पूसा कोठी (चित्र—30) यह मिट्टी की कच्ची ईंटो से बनी चौकोर रचना होती है। दो ईंटो के बीच पालीथीन की एक पर्त डाल दी जाती है तथा
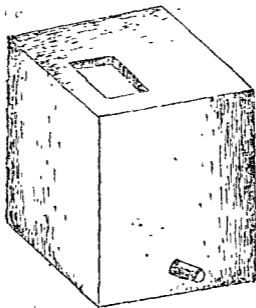
चित्र 30. पूसा कोठी

नीचे करीब 45 सेमी. की ऊँचाई तक पक्की ईंटें लगाई जाती हैं। कच्ची ईंटों की बनी होने के कारण इसमें बाह्य ताप का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता तथा बीच में पालीथीन की पर्त होने के कारण बाहरी नमी का भी प्रवेश अन्दर नहीं हो पाता। नीचे पक्की ईंटें लगी होने के कारण चूहों से भी सुरक्षा रहती है। इसमें अनाज भरने के लिए ऊपर तथा निकालने के लिए नीचे एक-एक छेद होते हैं। इसकी भण्डारण क्षमता 5 से 40 क्विटल तक होती है, इसका विकास भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था के वैज्ञानिक डॉ० प्रधान तथा डॉ० मुकर्जी ने सन् 1968 में किया।

(ii) हापुड़ थेका (चित्र—31) —धातु का एक गोल नाद इसका आधार होता है जिसके अन्दर कुछ-कुछ दूरी पर पूरी परिधि में करीब 5 से. मी. मोटाई के आठ बाँस के डंडे लगे होते हैं। इन डंडों में ऊपर की ओर हुक लगे रहते हैं, जिनके सहारे रबड़ चढ़ा कपड़ा नाद में लटका दिया जाता है। इसमें अनाज भरकर कपड़े का मुँह ऊपर से बन्द कर दिया जाता है। अनाज निकालने के लिए धातु के नाद में एक छेद होता है।

नाद के नीचे लकड़ी के टुकड़े लगाकर जमीन से लगभग 7–8 से० मी० ऊँचा कर दिया जाता है। पेंदा जमीन से ऊपर तथा धातु का बना होने के कारण इस पर जमीन की नमी का प्रभाव नहीं पड़ता तथा चूहों से भी सुरक्षा रहती है। रबड़

पक्का कपड़ा होने के कारण बाह्य जंतुओं के आक्रमण तथा नमी से भी सुरक्षा रहती है। यह रचना पश्चिमी उत्तरप्रदेश में किसानों द्वारा उपयोग में लिये जाने वाले सामान्य थेके का ही उन्नत रूप है। इसका विकास अनाज संचयन अनुसंधान तथा

चित्र 31. हापुड़ थेका
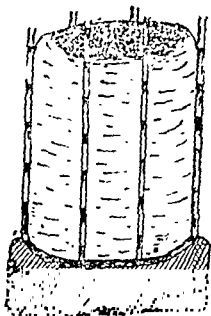
ट्रेनिंग केन्द्र हापुड़ द्वारा किया गया है। इसकी भण्डारण क्षमता 10 से 20 क्विंटल तक होती है।

(iii) पंतनगर कुठला (चित्र—32)—यह रचना पूर्वी उत्तरप्रदेश में प्रयुक्त कच्चे कुठले का ही संशोधित रूप है। इसका आधार गोल, मिट्टी का बना होता है, जिसे टिन की एक प्लेट पर रखा जाता है तथा उसके ऊपर तारफेल्ट की एक पर्त चढ़ाकर पुनः मिट्टी की एक पर्त चढ़ा दी जाती है। इसी आधार पर मिट्टी की एक गोलाकार दीवार बनाई जाती है, जिसकी दो पर्तों के बीच में तारफेल्ट की एक पर्त होती है। ऊपर की ओर अनाज भरने के लिए लगभग 30 से० मी० व्यास का छेद होता है तथा नीचे अनाज निकालने के लिए एक छोटा ढक्कन दार छेद होता है। इस रचना को लकड़ी के पायों पर रखा जाता है ताकि यह जमीन के सीधे सम्पर्क में न रहे।

इसकी भण्डारण क्षमता 6 से 50 क्विंटल होती है। वायुरोधी होने के कारण इसके अन्दर बाहर की नमी का प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अलावा तारफेल्ट की बेल्ट ऐसी सामग्री की होती है जिसकी ऊष्मा चालकता बहुत कम होती है अतः ताप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
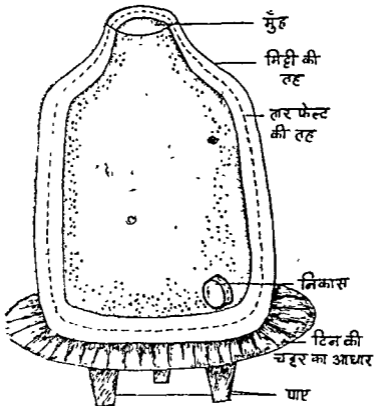
चित्र 32. पंतनगर कुठला

(iv) पंजाब कृषि विश्वविद्यालय कोठी (चित्र 33)—यह ग्रामीणों द्वारा उपयुक्त टिन के ड्रम का संशोधित रूप है। यह जस्तेदार धातु की बनी हुई गोलाकार रचना होती है। इसके ऊपर अनाज भरने के लिए तथा नीचे अनाज निकालने के लिए छेद होते हैं जो कार्कयुक्त ढक्कन से बन्द किए जा सकते हैं। इसकी भण्डारण क्षमता 7·5 से 15·00 क्विंटल तक होती है। इसकी देखभाल आसानी से की जा सकती है तथा सुविधापूर्वक इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। घरों में अनाज भण्डारण के लिए यह काफी उपयुक्त है।

विभिन्न प्रकार की धातु एवं पत्थर की बनी कोठियाँ सिद्धान्ततः एक जैसी ही हैं, लेकिन अलग-अलग राज्यों, क्षमता एवं कुछ अन्य छोटे-मोटे परिवर्तनों के कारण विभिन्न नाम दिए गए हैं। उदाहरण के लिए उदयपुर विश्वविद्यालय द्वारा विकसित कोलतार के ड्रम से बनी उदयपुर कोठी, चित्तौड़ के पत्थरों से बनी हुई चित्तौड़ कोठी तथा हापुड़ द्वारा विकसित एवं भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा संस्तुत एवं अनुमोदित घरेलू धातु की कोठी (Indoor Domestic metal bin)।

चित्र 33. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय कोठी

विपुल आयतन संचयन के लिए दीर्घाकार वैज्ञानिक रचनाएँ

(1) साइलो—बहुत बड़े पैमाने पर तथा लम्बी अवधि तक अनाज भण्डारण के लिए साइलो का उपयोग किया जाता है। भारत में विशेषकर सरकारी प्राधिकरणों द्वारा साइलो का उपयोग किया जाता है, ऐसी रचनाएँ हापुड़, नई-दिल्ली, कलकत्ता आदि स्थानों पर हैं।

ये आर. सी. सी तथा इस्पात की चद्दर की बनी बेलनाकार, 25 मीटर ऊँची तथा 7 मीटर व्यास की रचनाएँ होती है, इनके ऊपर लगभग 9 मीटर व्यास तथा 52 मीटर ऊँचाई का शीर्ष गृह (Head House) होता है। इसी के अन्दर अनाज भरने, निकालने आदि का काम करने वाली मशीनें लगी रहती है। इसकी भण्डारण क्षमता 1000 टन होती है तथा इसमें लगभग 5 वर्ष तक अनाज सुरक्षित रखा जा सकता है। ये हवारोधी होती हैं तथा मशीनों की सहायता से इनमें सरलतापूर्वक धूमन किया जा सकता है।

(2) एलिवेटर—बड़े-बड़े धान्य कोष्ठों को, जिनमें अनाज रखने, सुखाने, साफ करने, तौलने आदि की व्यवस्था होती है, एलिवेटर कहते हैं। भारतवर्ष में अमरीका सरकार की सहायता से हापुड में निर्मित एलिवेटर का उद्घाटन 21 मार्च, 1959 को हुआ, इसमे मशीनरी का खर्च लगभग 9 लाख, निर्माण खर्च लगभग 8·3 लाख जिसमे नींव-निर्माण खर्च 3 6 लाख रुपये है, इसकी भण्डारण क्षमता चार लाख टन है। इसमे 20 साइलो हैं, जिनकी ऊँचाई लगभग 23 मीटर तथा व्यास 13 मीटर है, प्रत्येक साइलो की भण्डारण क्षमता 508 टन है। इनके ऊपर शीर्ष गृह है जिसमे अनाज सुखाने, ठंडा करने, धूमन मुक्त करने तथा तौलने आदि की व्यवस्था है। एक नियन्त्रक तथा नौ आपरेटरों की सहायता से इस एलिवेटर में 100 टन अनाज प्रति

घण्टा की दर से सुखाकर भरा जा सकता है। इसमे 5 वर्ष तक अनाज सुरक्षित रखा जा सकता है। इसकी भण्डारण क्षमता 10,160 टन है।

साइलो के एक ओर रेलवे लाइन के समानान्तर 22 रेल हॉपर हैं तथा दूसरी ओर दो ट्रक डैम्प है। इनके अलावा एक 7 मीटर गहरा एलिवेटर पिट है जिसमे अनाज रेल हॉपर तथा ट्रक डैम्प से वाहक बेल्ट (Conveyer belt) द्वारा आकर एकत्रित होता है। यहाँ से एलिवेटरो द्वारा लगभग 45 मीटर की ऊँचाई तक अनाज उठाया जाता है तथा वहाँ तौला जाकर साफ करने की मशीन तक जाता है। इसके बाद स्वचालित तौल प्रणाली से होकर अपने आप निश्चित मात्रा मे तौला जाकर विभिन्न साइलो में भर दिया जाता है।

शीर्ष गृह के पास एक शोषक ताल (Drier tank) है जिसके द्वारा 10 टन अनाज प्रति घण्टे की दर से सुखाया जाता है। साइलो में विद्युत ताप मापी (Electric temperature indicator) लगे रहते हैं जिनसे उनके अन्दर के ताप का पता लगा करता है। यदि अनाज का ताप बढ़ जाता है तो उसमे हवा का संचारण करके ठंडा किया जाता है।

अनाज निकालने के लिए साइलो के नीचे पेन्दे की ओर लगे वाहक पट्टे (Conveyer belt) से अनाज को एलिवेटर पिट तक पहुँचाया जाता है, जहाँ से स्वतः बोरियों मे भरा जाकर अथवा ढेर के रूप में बाहर चला जाता है।

एलिवेटर के अलावा हापुड़ मे कंकरीट तथा सीमेंट के बने गोदाम हैं जिनकी भण्डारण क्षमता 10,500 टन है।
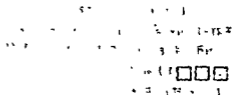
6

संचित अनाज के नाशक जीवों का नियन्त्रण

संचित अनाज को सुरक्षित रखने की विधियों को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) निरोधोपचार (Prophylactic measures) तथा

(ख) प्रत्युपायोपचार (Remedial measures)

(क) निरोधोपचार

इसके अन्तर्गत वे विधियाँ आती है जिनका उपयोग कीट ग्रसन के पूर्व किया जाता है ताकि कीट ग्रसन न हो सके।

(i) अनाज का सुखाना—संचयन के पूर्व अनाज को भली-भाँति सुखा लेना चाहिए क्योंकि अनाज में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत अथवा इससे कम होने पर कीट-ग्रसन नहीं होता है।

(ii) अनाज को बहुत अंधेरी तथा नम जगह में नहीं रखना चाहिए, ऐसे स्थानों पर कीट-ग्रसन अधिक होता है। संचयन के स्थान पर हवा तथा प्रकाश पहुँचना चाहिए। यदि कोठी में अनाज रखना हो तो वह वायुरोधी होनी चाहिए।

(iii) अनाज की पुरानी बोरियों को उबलते हुए पानी में कुछ समय के लिए डालकर धूप में सुखा लेना चाहिए अथवा उन्हें तेज धूप में सुखाना चाहिए ताकि उसमें विद्यमान कीट व अण्डे आदि मर जाएँ।

(iv) बोरियों में भरकर रखा जाने वाला अनाज सीधे जमीन के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए। अनाज तथा फर्श के बीच में लकड़ी के पट्टे अथवा पॉलीथीन की चद्दर लगा कर डनेज (Dunnage) कर देना चाहिए।

(v) बोरियों अथवा ढेर के रूप में रखे हुए अनाज को भण्डार की पूरी क्षमता तक नहीं भरना चाहिए ताकि समुचित रूप से वायु संचरण हो सके। बोरियों को चट्टा/थप्पी के रूप में रखना चाहिए तथा चट्टों के बीच में खुले रास्ते होने चाहिए जिससे हवा तथा काम करने वाले व्यक्तियों के आवागमन में सुविधा हो।

(vi) अनाज संचयन से पूर्व भण्डार को भली प्रकार साफ कर लेना चाहिए। भण्डार तथा कोठियों का प्रधूमन भी अच्छा रहता है। प्रधूमन के लिए धूमकों का उपयोग करना चाहिए जिनसे कीड़ों के अण्डे भी मर जाएँ।

(ख) प्रत्युपायोपचार

इसके अन्तर्गत वे विधियाँ आती हैं जिनका उपयोग कीट-ग्रसन हो जाने के बाद किया जाता है। इनके उपयोग से कीटों की संख्या कम हो जाती है जो उनके मरने अथवा अन्य तरीकों से भी हो सकती है।

1. यान्त्रिक नियंत्रण (Mechanical measures)

(अ) अनाज को हिलाना-डुलाना–इस विधि में अनाज को कम से कम 0.25 से 1 00 मीटर की ऊँचाई से गिराना चाहिए। इससे अनाज में विद्यमान कीट मर जाते हैं तथा उनकी विकासशील अवस्थाएँ हिलडुल जाने के कारण विकसित नही हो पाती है। यदि अनाज के अन्दर गर्म-स्थल (Hot spots) बन गए हो तो वे भी हिलडुल कर नष्ट हो जाते है। ऐसा पाया गया है कि अनाज को 1 मीटर की ऊँचाई से गिराने पर लगभग 66 प्रतिशत ग्रसन कम हो जाता है। लेकिन यदि अनाज को ऊँचाई से नही गिराया जाय तो कीट नही मरते। इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि कीट-ग्रसन और अधिक बढ़ जाय क्योकि इस क्रिया के दौरान स्वस्थ तथा ग्रसित दानें मिल जाते हैं।

यह क्रिया श्रम की दृष्टि से काफी मँहगी भी पड़ती है इसलिए विपुल आयतन संचयन अथवा अधिक मात्रा मे सचित अनाज के लिए उपयुक्त नही रहती। यही कारण है कि आमतौर पर इस विधि का उपयोग नही किया जाता।

(ब) पैकिंग—साधारणतः अनाज को बोरियों मे भरकर रखा जाता है; लेकिन बोरी मे भरकर रखे अनाज का धूमन आसानी से नही हो पाता, इसके अतिरिक्त इसमे बाहर से कीट-ग्रसन आसानी से हो सकता है। बोरियो मे बाहर से कीटो के प्रवेश को रोकने के लिए बोरियो को बनाते समय ही उनमे कीट नाशी मिलाने की व्यवस्था की जा सकती। बोरियो को कीटनाशी के घोल मे डुबा कर भी यह व्यवस्था हो सकती है। ऐसा करने पर बाहर से तो कीट-ग्रसन नही होता लेकिन अनाज मे पहले से विद्यमान कीटो पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ता। बोरियों में पालीथीन का अस्तर लगाकर भी अनाज रखने का प्रयास किया गया है लेकिन उसके अन्दर भी **कैलेन्ड्रा ओराइजी** तथा **राइजोपर्था डोमीनिका** आदि कीटो का प्रवेश हो जाता है। इस प्रकार के थैलो की विशेषता यह है कि उनमे रखे अनाज का धूमन किया जा सकता है।

पैकिंग साधनो का उपयोग विशेष रूप से सूखे मेवे, मसाले आदि रखने के लिए किया जाता है। काजू को वायुरहित डिब्बे मे भरकर रखने पर उसमे कीट ग्रसन नही होता है।

(2) भौतिक नियंत्रण (Physical measures)

(i) निष्क्रिय पदार्थों का उपयोग—अनाज में कीट नियंत्रण के लिए निष्क्रिय पदार्थ जैसे राख, रेत, नीम की पत्ती तथा तेल आदि को अनाज के साथ मिलाकर

रखने की प्रथा बहुत प्राचीन है तथा केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी प्रचलित है।

कई वैज्ञानिकों ने निष्क्रिय पदार्थों जैसे सिलिका, कोयले की राख, कंडे, की राख, फेल्सपार, मैग्नेसाइट, डोलोमाइट आदि के कीट-नाशी गुणों पर कार्य किया है, उन्होंने पाया कि इन निष्क्रिय पदार्थों के कण कीटों के शरीर के आवरण (क्यूटिकल) के अन्दर विद्यमान सूक्ष्म छिद्रों मे प्रवेश कर जाते हैं जिससे ये बन्द हो जाते हैं और अन्ततः कीट की मृत्यु हो जाती है।

विगल्सवर्थ (1947) ने देखा कि निष्क्रिय चूर्ण के उपयोग से कीटों के शरीर के ऊपर विद्यमान मोम की पर्त नष्ट हो जाती है जिसके कारण उनकी जल अवरोधी क्षमता समाप्त हो जाती है और वे मर जाते हैं। चूर्ण की प्रभावकता उसके कणों की नाप, कठोरता, आकार तथा वातावरण की नमी पर निर्भर करती है। मजूमदार आदि (1959) ने चारकोल तथा चिकनी मिट्टी (क्ले) के कीट-नाशी गुणों के बारे में जानकारी प्राप्त की और यह पाया कि यदि बुरादे अथवा रेत की 3/4 "–1" मोटी सतह कैलेसोब्रूकस काइनेन्सिस द्वारा ग्रसित अनाज के ऊपर लगा दी जाय तो इसके वयस्क बाहर नहीं आ पाते।

खरे तथा अग्रवाल (1972) तथा कावड़िया आदि (1978) ने अपने प्रयोगों में पाया कि गोबर की राख, क्ले तथा एल्यूमीनियम सिलिकेट को 1.5 प्रतिशत की दर से अनाज मे मिलाने पर कीट-ग्रसन कम होता है। इसके अलावा निम्न निष्क्रिय पदार्थ भी अनाज मे भार के आधार पर दिए गए अनुपात में कीट-ग्रसन रोकने के लिए मिलाए जाते हैं। लकड़ी की राख (1:4), लाइम (चूना) (1:2), टाक (1:60) तथा जिप्सम (1:65)।

यद्यपि ग्रामीण स्तर पर किसानों द्वारा इन पदार्थों का उपयोग किया जाता है लेकिन व्यावसायिक स्तर पर इनका उपयोग प्रचलित नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण इनको मिलाने के बाद अनाज को साफ करने की समस्या है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा पी. एफ ए. (Prevention of Food Adulteration Act) के अन्तर्गत खाद्यान्न मे किसी भी प्रकार के बाह्य पदार्थ की मिलावट का निषेध है।

(ii) ताप का उपयोग—संचित अनाज तथा अन्य सामग्रियों के कीट एक निश्चित ताप से अधिक या कम होने पर मर जाते हैं। कपास की लाल सूंडी का नियन्त्रण संचित कपास मे ताप को बढाकर किया जाता है। ताप का समान रूप से बढना आवश्यक है अन्यथा नमी का स्थानान्तरण हो जाता है जिससे अनाज के नष्ट होने का डर रहता है। शीत घरों (Cold storage) मे करीब 20°C ताप पर आलू का संचयन करने मे आलू के पतंगे नोरिमोशीमा ओपरकुलेला का आक्रमण नहीं होता है।

ऐसा पाया गया है कि अधिकांश कीट 35°C ताप पर जीवित नहीं रह पाते लेकिन खपरा (ट्रोगोडर्मा) तथा राइजोपर्था इस ताप पर भी जीवित रह सकते हैं। इसी प्रकार 40°C से अधिक ताप होने पर अधिकतर कीटों की तुरन्त मृत्यु हो जाती है, लेकिन ट्रोगोडर्मा माल्ट के अन्दर 56°C तथा बरुथी तम्बाकू के अन्दर 55°C पर जीवित रह सकते हैं। ऐसा भी पाया गया है कि 21°C ताप पर कीट जीवित नहीं रह पाते हैं। ताप के प्रभाव के सम्बन्ध में अध्ययन में यह पाया गया है कि ट्राइबोलियम कान्फ्यूजम के अण्डों को यदि 5°C तथा 10°C ताप पर 15 दिन के लिए रख दिया जाय और पुनः उन्हें 28°C ताप पर रखा जाए तो वे अण्डे फूट नहीं पाते। उच्च ताप के प्रभाव के बारे में यूसुफ (1974) ने पाया कि यदि कैलेसोब्रूकस एनेलिस के अण्डों से ग्रसित मूँग के दानों को 100°C ताप पर 10 मिनिट के लिए रख दिया जाय तो अण्डे मर जाते हैं पर दानों में अंकुरण पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

ताप के प्रभाव के लिए विकसित यंत्र सोलर हीट ट्रीटमेन्ट मशीन (Solar heat treatment machine) द्वारा ताप बढ़ाकर मक्के के कीटों के नियंत्रण के लिए सफल प्रयोग उदयपुर विश्वविद्यालय द्वारा किये गये हैं।

अनाज को एक निश्चित मात्रा की नमी तक सुखा कर रखने से भी कीड़ों का प्रकोप नहीं होता है। इसके अतिरिक्त कीट ग्रसन होने पर भी अनाज को धूप में सुखाने की प्रथा बहुत प्रचलित है, इससे प्रौढ़ कीटों के अलावा उनकी विकासशील अवस्थाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। एलीवेटरों में तो यांत्रिक रूप से अनाज को सुखाने की सुविधा उपलब्ध होती है।

(iii) अपकेन्द्रीय बल का उपयोग (Use of centrifugal force)—कीट ग्रसित सामग्री को 2000 से 3000 घूर्णन प्रति मिनट (आर. पी. एम) की गति से घुमाने पर प्रायः कीट मर जाते हैं। बड़ी-बड़ी आटा मिलों में इस प्रकार के यंत्र लगे रहते हैं जिन्हें एन्टोलेटर (Entolater) कहते हैं। ये आटे को अधिक रफ्तार पर घुमाने के काम आते हैं। पिसी हुई सामग्री के लिए तो इस प्रकार कीट नियंत्रण प्रचलित है लेकिन साबुत अनाज हेतु अभी यह तकनीक प्रचलित नहीं है।

(iv) कीटों को भौतिक रूप से अलग करना (Physical separation of insects)—अनाज की मंडियों में कीट ग्रसित अनाज को छानने की क्रिया बहुत प्रचलित है। इससे दानों के बाहर विद्यमान कीट अलग हो जाते हैं लेकिन दानों के अन्दर के कीटों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पर उपभोक्ता इससे सन्तुष्ट रहता है क्योंकि उसे अनाज में प्रत्यक्ष रूप से कीट चलते-फिरते दिखाई नहीं देते हैं। हालांकि कुछ वैज्ञानिकों की ऐसी मान्यता भी है कि इस प्रकार कीटों से अलग किए गए अनाज में प्रच्छन्न रूप में विद्यमान कीटों की संख्या में वृद्धि अधिक तीव्र गति से होती है।

(v) वायु प्रवाह (Aeration method)—संचयन के दौरान भण्डारों में वायु प्रवाह, ताप तथा नमी को कम करने के लिए किया जाता है। इससे कीटों की वृद्धि रुक जाती है। नुवेरो (1975) ने बताया कि यदि गर्मी के दिनों में संचित गेहूँ में ठंडी वायु (Refrigerated air) का प्रवाह किया जाय तो ताप को 30–32°C से 16–19°C तक कम किया जा सकता है। इससे कीटों का विकास रुक जाता है।

(vi) ध्वनि का उपयोग—वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ध्वनि के प्रभाव से कीटों का व्यवहार बदला जा सकता है। ध्वनि का प्रभाव कीटों की अण्डे देने की क्षमता, उनके विकास तथा जीवन-काल पर पड़ता है। मुलेन (1975) ने पाया कि पराध्वनि (Ultra sound) से ट्राइबोलियम कान्फ्यूजम का विकास रुक जाता है। अभी व्यावसायिक स्तर पर ध्वनि का उपयोग सम्भव नहीं हो पाया है।

(vii) विकिरण द्वारा (Irradiation)—गेहूँ पर किए गए विकिरण के प्रभावों से ज्ञात हुआ है कि 50,000 से 75,000 रैड शक्ति की गामा किरणों द्वारा कीट ग्रसित गेहूँ के समस्त कीटों को नष्ट किया जा सकता है. इस प्रकार उपचारित गेहूँ को कीट अवरोधी कोठियों में एक वर्ष तक सुरक्षित रखा गया है। विकिरित गेहूँ को कई पीढ़ियों तक खाने पर भी शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पाया गया। इसके अलावा विकिरण का गेहूँ के प्राकृतिक गुण पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पाया गया।

यदि धूमक से उपचारित गेहूँ को कीट अवरोधी कोठियों में संचित किया जाय तो उसमें पुनः ग्रसन की सम्भावना रहती है; लेकिन विकिरण द्वारा उपचारित गेहूँ में कीटों के बचे रहने तथा पुनः ग्रसन की सम्भावना नहीं रहती है।

(3) जैविक नियंत्रण

संचित अनाज के नाशी कीटों का जैविक नियंत्रण अपेक्षाकृत कठिन है। कारण यह है कि नाशी कीटों के मरने के बाद उनके परजीवी तथा परभक्षी जन्तु भी मर जाते हैं। सूक्ष्म-जीवी जन्तुओं की उपयोगिता पर अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस नामक बैक्टीरिया संचयन के दौरान शीघ्र नष्ट नहीं होता है अतः यह नियंत्रण के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

संचित अनाज के नाशी कीटों के जैविक नियंत्रण सम्बन्धी अनुसंधानों के बाद निष्कर्ष यही निकलता है कि संचयन के दौरान जैविक कारकों की अपेक्षा रासायनिक पदार्थ अधिक उपयोगी तथा लाभप्रद होते हैं।

(4) वैधानिक नियन्त्रण

आरम्भ में नाशक जीवों के प्रवेश पर कोई अन्तर्राष्ट्रीय अथवा अन्तर्देशीय प्रतिबन्ध नहीं होने के कारण कई नाशक कीट अन्य देशों से भारतवर्ष में आयात तथा कई यहाँ से दूसरे देशों में निर्यात हो गए। इस दिशा में पहला कानून सन् 1906 में

सी कस्टम्स एक्ट (Sea Customs Act) 1978 के नाम से पास किया गया; जिसके द्वारा मैक्सिकन कॉटन- बॉल वीविल के प्रवेश पर रोक लगा दी गई। उसके बाद बॉम्बे चैम्बर ऑफ कॉमर्स के अनुरोध पर 3 फरवरी, 1914 को वर्तमान नाशक कीट व जन्तु कानून नं० II (Destructive Insects and Pests Act No. II) पास किया गया। इसके अन्तर्गत बाहरी देशो से नाशक कीटो के प्रवेश पर रोक लगा दी गई। अब बाहर से कोई भी पौधा, बीज अथवा खाद्यान्न निश्चित बन्दरगाहों से अधिकृत व्यक्तियों द्वारा स्वास्थ्य प्रमाण-पत्र देने पर ही आयात किया जा सकता है। विभिन्न नाशी कीटो तथा अन्य जन्तुओ के नियन्त्रण के लिए समयानुसार विभिन्न सुधार किये गये। सन् 1946 मे केन्द्रीय पौध संरक्षण तथा क्वैरेन्टीन (Central Directorate of Plant Protection and Quarantine) की स्थापना की गई। इससे पूर्व पौधों व नाशक जीवों पर लगाई गई रोक का कार्य सीमा शुल्क अधिकरण (Custom Authorities) द्वारा ही किया जाता था। अब केन्द्र सरकार ने कई बन्दरगाहों जैसे—बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, मद्रास तथा विशाखापट्टनम एवं हवाई अड्डों जैसे—अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई दिल्ली तथा थल सीमा जैसे—बाघा व सुखिया पोकरी पर क्वैरेन्टीन तथा प्रसन मुक्ति (Quarantine and Disinfestation) के लिए साधन सुलभ है। इन केन्द्रों पर योग्य वैज्ञानिको द्वारा निरीक्षण तथा रोकथाम का कार्य करने के बाद ही सामग्री देश में लायी जा सकती है। प्रथम क्वैरेन्टीन तथा धूमन केन्द्र (Plant Quarantine and Fumigation Station) सन् 1949 में स्थापित किया गया। सन् 1951 मे संयुक्त राष्ट्र संघ तथा खाद्य एव कृषि संगठन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय पौध सुरक्षा सम्मेलन मे विभिन्न देशों में क्वैरेन्टीन सम्बन्धी नियमो के पालन के लिए कुछ सिद्धान्त व नियम बनाये जिनका पालन भारत सहित प्रत्येक सदस्य राष्ट्र करता है।

राज्यो ने भी नाशक जीवो के नियन्त्रण के लिए भारत सरकार के 1914 के नाशक जीव नियन्त्रण कानून के अन्तर्गत कृषि नाशक जीव, व्याधि, हानिकारक खरपतवार कानून (Agricultural pests, diseases and noxious weeds Act) बनाये हैं, जिसके तहत प्रत्येक राज्य सरकार अपने तरीके अपनाती है।

खाद्य-पदार्थों की सुरक्षा के लिए सरकार ने पी० एफ० ए० (Prevention of Food Adulteration Act) बनाया है जिसके तहत खाद्य-सामग्री में किसी भी अन्य पदार्थ का मिश्रण गैर-कानूनी है।

वैधानिक नियन्त्रण के अभाव में भारत में आयात हुए कीट :

क्रम संख्या	कीट का नाम	देश जहाँ से आयात हुआ
1.	कॉडलिंग मॉथ (एनर्मोनिया)	उत्तरी अमेरिका
2.	सैनजोस स्केल (ऐस्पीडिओटस पर्नीसिओसस)	"
3.	वूली एफिस (एरिओसोमा लैनीजेरम)	"
4.	धान का घुन (साइटोफिलस ग्रेनेरियस)	"
5.	काटनी कुशन स्केल (इसेरिया पर्चेजाई)	"
6.	एन्गोमोइस ग्रेन मॉथ (साइटोट्रोगा सेरेलेला)	फ्रांस
7.	सा टूथ ग्रेन बीटल (ओराइजोफिलस सुरिनामेन्सिस	सुरीनाम

भारतवर्ष से विदेशों में निर्यात हुए कीट

1.	खपरा बीटल (ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम)	यूरोप को
2.	धान का घुन (साइटोफिलस ओराइजी)	यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका को
3.	लेसर ग्रेन बोरर (राइजोपर्था डामीनिका)	यूरोप को

(5) रसायनिक नियन्त्रण

(i) निष्क्रिय गैस—यदि खाद्यान्न भण्डारों में ऑक्सीजन की मात्रा कम तथा अन्य गैस जैसे कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा अधिक कर दी जाये तो कीटों का जीवित रहना असम्भव हो जायेगा। इस प्रकार ऑक्सीजन के बदले दूसरी गैस द्वारा भण्डार में कीट नियन्त्रण के प्रयास बहुत पहले से किये गये हैं। यही कारण है कि वायुरोधी संचयन रचनाओं में कीटों का प्रकोप कम होता है, क्योंकि संचित अनाज तथा उसमें विद्यमान कीटों द्वारा श्वसन के कारण वहाँ ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप कीट जीवित नहीं रह पाते। जे इत्यादि ने (1975) पाया कि यदि भण्डार के अन्दर के

वातावरण मे 60 प्रतिशत कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा चार दिन बनाई रखी जाये तो कीटो की सभी अवस्थाएँ नष्ट हो जाती हैं।

वायुरोधी भण्डारो मे अनाज संचयन करने से दानो की अंकुरण क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कार्बन-डाई-ऑक्साइड के अलावा भण्डार मे कीट नियन्त्रण के लिए नाइट्रोजन तथा कार्बन मोनो-ऑक्साइड की उपयोगिता पर भी शोध कार्य किया गया है तथा कुछ वैज्ञानिको ने इन्हे उपयोगी बताया है।

(ii) वनस्पति उत्पाद—अपने प्रतिकर्षी तथा कीटनाशी गुणों के कारण कतिपय वनस्पति उत्पाद कीट ग्रसन रोकने अथवा कम करने के काम आते हैं। नीम के बीज का चूर्ण 1–2 भाग प्रति 100 भाग गेहूँ के साथ वजन के आधार पर मिलाकर रखने से लगभग 300 दिन तक साइटोफिलस ओराइजी, राइजोपर्था डोमीनिका तथा ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम का ग्रसन नहीं होता है। इसी प्रकार धारेक के फल व पत्तियों, कनेर के फल, सदाबहार की पत्ती, आक की पत्ती, नीबू की पत्ती, धतूरे की पत्ती तथा ग्वार पाठा की पत्ती के भी कीटनाशी गुणो पर शोध कार्य किया गया है और उन्हें उपयोगी पाया गया है। यदि अनाज के ऊपर इन पत्तियो की 1 से० मी० तह रख दी जाये तो कीट ग्रसन नही होता है। इनके चूर्ण को 1–2 ग्राम/100 ग्राम बीज के साथ मिलाने से भी बीज की रक्षा हो जाती है।

तेलो का उपयोग—अन्न सुरक्षा के लिए खाद्य तेलो को अनाज में मिलाने की प्रथा अपने देश में बहुत पुरानी है। मूँगफली अथवा तिल के तेल को मूँग, चवला आदि में 5–10 मि०ली०/किलोग्राम दानों की दर से मिलाने पर दानो को लगभग 6 माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह भी पाया गया है कि कच्चा तेल शोधित तेल की अपेक्षा कीट नियन्त्रण के लिए अधिक उपयोगी होता है।

खाद्य तेलो के अलावा अखाद्य तेल जैसे—नीम, महुआ, सत्यानाशी, रतनजोति, उण्डी, आदि का तेल भी अन्न सुरक्षा के काम लिया जा सकता है। लेकिन ऐसे तेल केवल बीजो की सुरक्षा के लिए ही उपयोगी हो सकते हैं, क्योंकि खाद्य सामग्री में इन्हें मिलाने पर उसके स्वाद पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दूसरे पी० एफ० ए० के अन्तर्गत किसी भी बाह्य पदार्थ का मिश्रण खाद्यान्न में कानूनी तौर पर वर्जित है।

बीजों में भी इनका उपयोग इसलिए नही किया जा सकता, क्योंकि प्रायः बीज के लिए रखा गया अनाज बच जाने पर खाने के काम लिया जाता है। अभी तक अपने देश में अलग से बीज संचयन की प्रथा प्रचलित नही है।

(iii) अकार्बनिक तत्व—संश्लिष्ट कार्बनिक कीटनाशियो के आविष्कार के पहले अनाज के नाशी कीटो के नियन्त्रण के लिए अकार्बनिक रसायनिक तत्त्वो का उपयोग किया जाता था।

(क) गन्धक—अनाज की कोठियों में गन्धक को जलाकर उससे उत्पन्न सल्फर डाई-ऑक्साइड से कीट नियन्त्रण किया जाता था। अब यह उपयोग में नहीं है।

(ख) पारा—पारे को मिट्टी अथवा गोबर में लपेटकर गोलियाँ बनाकर अनाज में रखा जाता है। पारे के कारण कीटों के अण्डे भी मर जाते हैं। इस प्रकार की गोलियाँ अब भी बनाई जाती है।

(ग) बोरेक्स—थोड़ी मात्रा में चावल में बोरेक्स मिलाकर रखने से कीटों का प्रकोप नहीं होता है।

अकार्बनिक पदार्थों के उपयोग में बहुत श्रम की आवश्यकता होती है। इसके अलावा ये कम प्रभावी तथा अधिक मँहगे हैं। ये कीटनाशी स्पर्श तथा आमाशीय विष हैं। अधिक विषाक्त होने के कारण मनुष्य के लिए इनका उपयोग प्रायः समाप्त हो गया। इसके विपरीत संश्लिष्ट कार्बनिक रसायन अपेक्षाकृत सस्ते, अधिक प्रभावी तथा कम घातक हैं। अतः उन्हें भण्डारों में अन्न सुरक्षा के लिए काम में लिया जा सकता है।

(iv) संश्लिष्ट कार्बनिक रसायन

(क) डी० डी० टी०—अनाज पर पाये जाने वाले अवशेष के कारण इसका उपयोग अब अन्न सुरक्षा के लिए नहीं किया जाता है। इसके अवशेष का वसा में शोषण भी अधिक मात्रा में होता है।

(ख) डी० डी० वी० पी० (डाइक्लोरवास)—इसका शोषण अनाज के अन्दर नहीं होता है, चाहे अनाज बोरी में रखा हो अथवा ढेर में। यह उड़ने वाले कीटों के नाश के लिए अधिक उपयोगी पाया गया है।

(ग) बी० एच० सी०—गेहूँ, जौ, दालें, मूँगफली आदि की सुरक्षा के लिए बोरियों पर बी. एच. सी का छिड़काव अपने देश में बहुत प्रचलित था। बीज के लिए उपयोग किये जाने वाले अनाज में 5 प्रतिशत बी. एच. सी. चूर्ण को 250 ग्राम/क्विण्टल की दर से मिलाया भी जाता है। कीटनाशी मिश्रित अनाज को भोजन के उपयोग में नहीं लाया जा सकता है, क्योंकि शरीर के अन्दर लिपिड्स में इसका शोषण हो जाता है और इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों व तन्त्रों में पहुँचकर प्रायः वसा, यकृत व गुर्दों में एकत्रित हो जाता है।

मनुष्य के लिए बी एच. सी. की अनुमानित घातक मात्रा 150 मि.ग्रा/कि. ग्रा. शरीर भार होती है। बच्चों के लिए यह कीटनाशी विशेष घातक है।

(घ) मैलाथियान—अन्न सुरक्षा के लिए मैलाथियान का उपयोग सबसे अधिक किया गया है। बोरियों पर इसका छिड़काव तथा अनाज में चूर्ण का मिश्रण किया जाता है। बीजों में 250 ग्राम/क्विण्टल की दर से 5 प्रतिशत मैलाथियान चूर्ण मिलाने से 6 से 8 माह तक कीट प्रकोप नहीं होता है। पतंगों के नियन्त्रण के लिए इसे अधिक उपयोगी पाया गया है।

मनुष्य के लिए यह अपेक्षाकृत कम हानिकर है। 0 2 मि. ग्रा./किलोग्राम शरीर-भार की दर से प्रतिदिन मैलाथिग्रान के उपयोग से भी कोई हानि होती नही पाई गई है।

(च) पाइरेथ्रम—यह पादप जनित कीटनाशी है जिसमें सक्रिय तत्व पाइरेथ्रिन होता है। भण्डारों मे कीट नियन्त्रण के लिए 0.02 प्रतिशत पाइरेथ्रम का छिड़काव किया जाता है। संश्लिष्ट कार्बनिक कीटनाशियो के विपरीत इसमें अवशेष की समस्या नही होती। इससे पतगा व बरूथी का प्रभावी नियन्त्रण सम्भव है। दुग्ध चूर्ण, प्रोटीन सम्बन्धित आटा, आदि पदार्थों पर, जिन पर संश्लिष्ट कार्बनिक कीटनाशियों का उपयोग नही किया जा सकता, इसका उपयोग किया जा सकता है।

अन्न सुरक्षा के लिए कीटनाशियों का उपयोग

(i) **सुरक्षात्मक उपाय**—डी. डी. टी., बी. एच. सी., लिण्डेन, डाइएल्ड्रिन, मैलाथिग्रान तथा पाइरेथ्रम आदि कीटनाशियो का छिड़काव कोठियो, गोदामो तथा बोरियों पर सतही उपचार के रूप मे किया जाता है। डी. डी. टी तथा बी. एच. सी. का छिड़काव इस प्रमात्रा का करना चाहिये जिससे 50–100 मि ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति वर्ग मीटर की दर से एकत्रित हो सके। मैलाथिग्रान का छिड़काव इस प्रकार करना चाहिये ताकि इसका सक्रिय तत्व 100 मि. ग्रा प्रति वर्ग मीटर की दर से जमा हो सके।

मैलाथिग्रान का उपयोग अच्छा रहता है क्योकि कम विषालु होने के साथ-साथ इसके उपयोग से अनाज मे किसी प्रकार की गन्ध भी नही आती।

बोरियो के उपचार के लिए पहले बी. एच. सी तथा डी. डी. टी. चूर्ण का उपयोग 50 मि. ग्रा. सक्रिय तत्व/वर्ग मीटर की दर से किया जाता था, लेकिन अब अन्न सुरक्षा के लिए इनका उपयोग प्राय: बन्द हो गया है। इनके बदले 0.5 प्रतिशत मैलाथिग्रान अथवा डी. डी. वी. पी. का छिड़काव बोरियो के ऊपर किया जाता है। मैलाथिग्रान के उपचार को 2–3 सप्ताह बाद दोहराना चाहिये तथा इसके उपचार के बाद गोदाम को कम से कम 12 घण्टे तक बन्द रखना चाहिये। डी. डी. वी. पी. का उपयोग तब किया जाता है जब कीटग्रसन बहुत अधिक हो। जब तक कीटग्रसन कम न हो जाये इसके उपचार को एक दिन के अन्तराल से करते रहना चाहिये।

(ii) **कीटनाशी का अनाज में मिश्रण**—यद्यपि भारत सरकार के कानून पी. एफ. ए. ए. (Prevention of Food Adulteration Act) के अनुसार अनाज में किसी भी बाह्य पदार्थ का मिश्रण वर्जित है पर फिर भी अपने यहाँ राख, रेत, सूखी पत्ती आदि मिलाने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित व प्राचीन होने के कारण कीटनाशियों का मिश्रण प्रचलित हो गया। कीटनाशी का मिश्रण केवल बीजो की सुरक्षा के लिए किया जा सकता है। डी. डी टी., बी. एच. सी. तथा मैलाथिग्रान का चूर्ण 250 ग्राम/क्विण्टल की दर से मिलाकर अनाज को लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित

रखा जा सकता है। अन्न सुरक्षा के लिए मैलाथियान का मिश्रण विदेशों में भी किया गया है।

इस प्रकार कीटनाशियों का गोदामों, कोठियों तथा अन्य धान्यागारों में उपयोग केवल प्रत्योपचार ही है। इससे अनाज के अन्दर का प्रच्छन्न कीट-ग्रसन समाप्त नहीं होता, पर बाहर से ग्रसन की सम्भावना कम हो जाती है। चूँकि इस प्रकार के प्रत्योपचार करते पड़ते हैं, इसलिए संचयन के दौरान इनका उपयोग किया जाता है। इसके करने से भण्डार में धूमन की आवश्यकता कम पड़ती है।

इस विषय में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि यदि एक ही कीटनाशी का उपयोग अधिक समय तक किया गया तो कीट उसके प्रति अवरोधी हो जायेंगे। अतः समय-समय पर कीटनाशियों को बदलते रहना चाहिये।

अपने देश में पहले कीटनाशी चूर्ण का उपयोग अधिक होता था, लेकिन बाद में स्वच्छता के लिए चूर्ण का उपयोग कम हो गया और अब छिड़काव अधिक किया जाता है। यह क्रिया प्रचालक की दृष्टि से भी अच्छी रहती है। प्रत्योपचार की सफलता के लिए निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

1. सही कीटनाशी का चुनाव।
2. अन्न में नमी की मात्रा बहुत अधिक नहीं होनी चाहिये।
3. संचयन माध्यम का तापक्रम बहुत अधिक नहीं होना चाहिये।
4. एक ही कीटनाशी का उपयोग अधिक समय तक नहीं करना चाहिये।

अन्न सुरक्षा के लिए उपयोग किये जाने वाले कीटनाशियों में निम्न गुण होने चाहिए—

1. यह कीटों के लिए अधिक तथा मनुष्य के लिए कम विषालु होना चाहिये।

2 इसका अवशेष अधिक दिन तक क्रियाशील रहना चाहिये, लेकिन अन्न पर यह अवशेष इतना न हो जो मनुष्य के लिए घातक हो ताकि उपभोक्ता सुरक्षित रहे।

प्रायः ऐसा पाया गया है कि जिन कीटनाशियों की अवशेष क्रिया लम्बी होती है उनके विषालु अवशेष भी अन्न पर अधिक पाये जाते हैं, जो उपभोक्ता के लिए ठीक नहीं हैं। अतः ऐसे ही कीटनाशियों को ही काम में लेना चाहिये जिनकी अवशेष क्रिया भले ही कुछ कम हो पर मानव उपयोग की दृष्टि से अपेक्षाकृत सुरक्षित हों।

(ब) धूमक—वह रसायन, जो एक निश्चित ताप व दाब पर गैस के रूप में इतनी शक्ति में रह सके कि शत्रु कीटों के लिए घातक हो, धूमक कहलाता है। कीटों द्वारा धूमक का शोषण परमाणवीय अवस्था में होता है।

अच्छे धूमक के गुण

1. कीटों के लिए अत्यन्त विषैला तथा पृष्ठवंशियों व पौधों के लिए हानि-रहित हो।

2. आसानी से द्रव अवस्था में संघनित न हो।
3. पानी में घुलनशील नहीं हो।
4. इसकी उपस्थिति का पता सूँघकर आसानी से लगाया जा सके।
5. खाद्य पदार्थों पर कोई दुष्प्रभाव न छोड़े।
6. प्रसरण की अधिक क्षमता हो।
7. बेधन क्षमता अधिक होनी चाहिए।
8. घातक अवशेष नहीं छोड़ना चाहिए।
9. ज्वलनशील व विस्फोटक नहीं होना चाहिए।
10. धातु तथा कपड़ों आदि पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
11. उपयोग आसान व सस्ता हो।

धूमकों के उपयोग सम्बन्धी सम्भावित दुष्प्रभाव

1. धूमित पदार्थ पर धूमक हानिकारक अवशेष रह सकता है।

2. खाद्य पदार्थ पर धूमक का अवशेष किसी अन्य ऐसे पदार्थ के रूप में रह सकता है जो संयोजन में धूमक से भिन्न हो लेकिन उपभोक्ता के लिए हानिकारक हो।

3. धूमक खाद्य पदार्थ से क्रिया करके उसमे हानिकारक अवशेष छोड़ दे तथा भोज्य पदार्थ की पोषक क्षमता कम कर दे।

धूमन विधियाँ—धूमन करने के लिए आवश्यक है कि संचयन साधन ऐसा हो जिसे धूमन के बाद हवारोधी बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त उसमे धूमक के उपयोग के लिए कोई छिद्र होना चाहिए। सफल नियन्त्रण के लिए आवश्यक है कि धूमक सम्पूर्ण संचयन साधन मे समान रूप से प्रसरित हो। प्राय: धूमक वायु से हल्का होने के कारण आसानी से प्रसरित हो जाते हैं; लेकिन कुछ धूमक वायु से भारी होने के कारण आसानी से प्रसरित नहीं होते और भण्डार मे कुछ विशेष स्थानो पर एकत्रित हो जाते हैं। ऐसे धूमको के समान रूप से प्रसरण के लिए कुछ विशेष साधनों का उपयोग किया जाता है।

कुछ धूमकों का प्रभाव उनकी सांद्रता तथा धूमनकाल पर निर्भर करता है, इसे सांद्रता : काल उत्पाद कहते हैं। मेथाइल ब्रोमाइड, एथाइलीन डाइब्रोमाइड तथा अन्य द्रवीय धूमकों के लिए जिनमे कार्बन टेट्राक्लोराइड मिश्रित होता है, सांद्रता : काल की बात युक्ति संगत है लेकिन फास्फीन तथा हाइड्रोसायनिक एसिड ऐसे धूमक हैं जिनके संदर्भ मे सांद्रता : काल उत्पाद की बात बहुत सीमित महत्त्व की है क्योंकि निश्चित सांद्रता मे कम होने पर इनसे कीट मरते ही नहीं चाहे धूमन काल कितना भी बढ़ा दिया जाय। यह सम्भवतः इसलिए होता है कि धूमक के शोषण के बाद श्वसन पक्षाघात हो जाता है जिससे धूमक का और अधिक शोषण नहीं हो पाता है। अतः आवश्यक है कि धूमक की सांद्रता अधिक हो ताकि एक बार में ही धूमक का इतना शोषण हो जाय जो कीट के लिए घातक हो।

अत: धूमन के प्रकार, संचयन साधन तथा धूमित की जाने वाली सामग्री की दृष्टि से विभिन्न धूमन विधियाँ काम मे ली जाती हैं।

(अ) वायुमण्डलीय धूमन—इस विधि द्वारा ठोस तथा द्रव धूमक का उपयोग किया जाता है। इसमे किसी विशेष उपकरण अथवा अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती है। द्रव धूमक साधारण पानी के झारे अथवा किसी पतली नली द्वारा भण्डार/धान्यागार के अन्दर प्रयोग किया जाता है। बड़े-बड़े धान्यागारो/भण्डारो मे धूमक के उपयोग के लिए छत मे छिद्र होता है जिससे ठोस द्रव धूमक को अन्दर डाला जाता है। इसके अलावा खुले मैदान मे बोरियाँ रखकर उन्हे तारपोलीन/विशेष रूप से बनी पोलीथीन/पालीविनाइल की चद्दरों से ढककर धूमन किया जाता है। चद्दरें ढकने के बाद उसे वायुरोधी बनाने के लिए चारों ओर से मिट्टी से दबा दिया जाता है, इस प्रकार एल्यूमीनियम फास्फाइड द्वारा धूमन किया जाता है।

(ब) वायु के कृत्रिम प्रवाह द्वारा धूमन—ऐसे धूमको के लिए जो आसानी से भण्डार मे फैल नही पाते वायु के कृत्रिम प्रवाह का उपयोग किया जाता है। इस विधि में धूमक अन्दर पहुँचाने के लिए एक विशेष प्रकार की रबड की रचना का उपयोग किया जाता है जिससे किसी टैंक में रखा हुआ धूमक भण्डार मे पहुँचाया जाता है। उसके अन्दर हवा के विसरण के लिए ब्लोअर का उपयोग किया जाता है, जिसमे धूमक पूरे भण्डार में फैल सके। मालगाड़ी के डिब्बे, बड़े-बड़े ट्रक तथा अन्य भण्डारो आदि मे इस प्रकार धूमन किया जाता है। हवा से भारी धूमक जैसे मैथाइल ब्रोमाइड का धूमन बिना हवा के प्रवाह के सफलतापूर्वक नही किया जा सकता।

(स) निर्वात धूमन—इसके लिए विशेष प्रकार से निर्मित धूमन कक्ष होता है, जिसमे हवा के निकास तथा प्रवेश के लिए नलिकाएँ तथा कपाट होते हैं। इस कक्ष मे ऐसे पम्प की व्यवस्था होती है जो इसकी हवा को शीघ्र निकाल सके। इस विधि से धूमन शीघ्रता से किया जा सकता है। कोमल पेड़-पौधे, फल, सब्जियाँ आदि का धूमन इस प्रकार नही किया जा सकता क्योंकि वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। एथिलीन ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड का मिश्रण, मेथाइल ब्रोमाइड, ऐक्रिलो-नाइट्राइल तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड के मिश्रण तथा हाइड्रोजन साइनाइड का धूमन इस विधि द्वारा किया जाता है। ऐलूमीनियम फास्फाइड का उपयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता क्योंकि फास्फीन कम दाब पर स्थाई नही रहती।

धूमक की मात्रा एवं सांद्रता का निर्धारण—प्रत्येक धूमक धूमित पदार्थ पर अपना अवशेष छोड़ता है। इस अवशेष को एक भाग/दस लाख (पी.पी.एम.) के रूप मे व्यक्त किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के संस्तुति पर प्रत्येक कीटनाशी रसायन के लिए सहन सीमा नियत की गई है। यह ध्यान रखा जाता है कि अवशेष कभी भी स्वीकृत सीमा मे अधिक न हो।

आज कल सहन सीमा को पी. पी. एम. के बदले ए. डी. आई. (Accepted Daily Intake) के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि इतनी मात्रा में कीटनाशी यदि मनुष्य प्रतिदिन, जीवनपर्यन्त ले तो भी उसके शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नही पड़ेगा।

कीटनाशी रसायनो के अवशेषों की समस्या को देखते हुए धूमक की निश्चित मात्रा व सांद्रता का सही उपयोग व आकलन आवश्यक है।

धूमक की अवस्था तथा धूमन के प्रयोजन के अनुसार धूमक की मात्रा को विभिन्न प्रकार व्यक्त करते हैं। ठोस धूमक ऐल्यूमीनियम फास्फाइड की मात्रा 3 ग्राम की एक गोली/टन; इथाइलीन डाइब्रोमाइड तथा मेथाइल ब्रोमाइड को मि० ग्राम/लीटर तथा द्रवीय धूमकों को घन से. मी., घन मीटर के रूप में व्यक्त किया जाता है।

सांद्रता को ब्रिटिश प्रणाली में औंस/1000 घन फीट तथा मीट्रिक प्रणाली मे ग्राम/घन मीटर अथवा मि. ग्रा./लीटर के रूप में व्यक्त किया जाता है। इन मात्राओं को एक दूसरे मे बदलने के लिए निम्न सूत्रों का उपयोग किया जाता है—

(i) औंस/1000 घन फीट = ग्राम/घन मीटर = मि. ग्रा./लीटर

(ii) मि. ग्रा/लीटर पी. पी. एम. $\frac{293}{273} \times \frac{\text{मि.ग्रा./लीटर}}{\text{ग्राम अणुभार}} \times 22{\cdot}4$

यह सूत्र इस कल्पना पर आधारित है कि गैसों की स्थिति में पदार्थ का ग्राम अणुभार (G.M.W.) 273° K ताप और 760 मि. मी. दाब पर 22·4 लीटर स्थान घेरता है।

ग्राम प्रति घन मीटर को आयतन के अनुसार भागों में रूपान्तरित करना

(i) दिए गए मान को गैस के अणुभार से भाग देकर फिर 22·4 से गुणा करने पर प्राप्त अंक हवा में धूमक की मात्रा घन से. मी./लीटर प्रगट करता है।

(ii) इस प्राप्त अंक का एक हजार गुना आयतन के अनुसार भाग प्रति दस लाख होगा।

(iii) घन से. मी./लीटर का 1/10 भाग आयतन के अनुसार प्रतिशत होगा।

उदाहरण—10 ग्राम प्रति घन मीटर एच. सी. एन. को रूपान्तरित करना। (ग्राम अणुभार लगभग 27)

$\frac{10 \times 22{\cdot}4}{27}$ = 8·3 घन से. मी./लीटर = आयतन के अनुसार लगभग 8300 भाग प्रतिदस लाख = आयतन के अनुसार लगभग 0·83%।

भाग प्रति दस लाख (पी. पी. एम.) अथवा आयतन की प्रतिशत को ग्राम प्रति घन मीटर में रूपान्तरित करना

(i) भाग प्रति दस लाख को 1000 से भाग देने अथवा प्रतिशत को 10 से गुणा करने पर गैस की मात्रा घन सेमी/लीटर ज्ञात होगी।

(ii) इस संख्या को दी हुई गैस के ग्राम अणुभार से गुणा करके 22·4 से भाग देने पर ग्राम/घन मीटर ज्ञात होगा।

उदाहरण—मिथाइल ब्रोमाइड 600 भाग प्रति दस लाख को रूपान्तरित करना। (अणुभार लगभग 95)

$$\frac{600}{1000} = 0·6 \text{ घन से.मी./लीटर}$$

$$\frac{0·6 \times 95}{22·4} = 2·4 \text{ ग्राम/घन मीटर}$$

या मि ग्रा. प्रति लीटर या औंस प्रति 1000 घन फीट

धूमक की मात्रा निम्न कारकों पर निर्भर करती है—

(i) खाद्यान्न की मात्रा।

(ii) कीट ग्रसन का प्रतिशत/सीमा।

(iii) भण्डार के हवारोधी होने की स्थिति।

(iv) भण्डार का तापमान जो साधारणतया 65°C से कम होना चाहिए।

(v) खाद्यान्न में नमी का प्रतिशत जो 10% से कम नहीं होना चाहिए।

(vi) भण्डार/धान्यागार का आयतन।

धूमकों के उपयोग सम्बन्धी सावधानियाँ

(i) धूमक का उपयोग किसी विशेषज्ञ की राय के अनुसार करना चाहिए तथा धूमक खरीदते समय उसके बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(ii) धूमक को शुष्क, ठंडे तथा हवादार स्थान में ताले में बन्द करके रखना चाहिए।

(iii) धूमन क्रिया किसी स्वस्थ व प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए।

(iv) धूमित किया जाने वाला भण्डार, कोष्ठ, गोदाम आदि पूर्ण रूप से हवारोधी होने चाहिए।

(v) धूमन करने से पहले भली-भाँति देख लेना चाहिए कि अन्दर कोई, मनुष्य, छोटा बच्चा या कोई पालतू जानवर न रह जाय।

(vi) गोदाम/भण्डार में धूमन आरम्भ करने से पहले अग्नि-शमन यंत्रों को सम्भाल कर रखना चाहिए ताकि दुर्घटना के समय उनका उपयोग किया जा सके। इसके अलावा उस स्थान पर प्राथमिक सहायता की भी व्यवस्था होनी चाहिए जो आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त उपलब्ध हो सके।

(vii) द्रव अथवा गैस धूमक को भण्डार के बाहर से प्रयोग करना चाहिए, यदि अन्दर से प्रयोग करना हो तो प्रचालक को मॉस्क पहनना चाहिए।

(viii) धूमन के समय भण्डार के तापमान का ध्यान रखना चाहिए। कम तापमान पर धूमक का विसरण भली प्रकार नहीं होता, ऐसी स्थिति में हवा के कृत्रिम संचरण की आवश्यकता पड़ सकती है। धूमन के लिए उपयुक्त तापमान $26^{\circ} \pm 1^{\circ}C$ होता है।

(ix) धूमन के बाद भण्डार के अन्दर अथवा उसके आसपास किसी को भी जाने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए।

(x) धूमन कर्त्ता को बाद में अपना हाथ-पैर भली प्रकार साबुन से साफ कर लेना चाहिए।

(xi) धूमन के बाद अनाज की बोरियों अथवा अन्य पात्रों को सीधे फर्श पर नहीं रखना चाहिए। उन्हें सीमेन्ट अथवा लकड़ी के चबूतरे पर रखना चाहिए।

(xii) धूमन के पश्चात भण्डार को पर्याप्त समय तक खुला रखना चाहिए ताकि उसके अन्दर की गन्ध पूर्ण रूप से समाप्त हो जाए। धूमक के लिए निश्चित अनावृन काल से अधिक समय तक भण्डार को बन्द नही रखना चाहिए।

(xiii) यदि किसी व्यक्ति को श्वांस के साथ किसी अन्य गैस के अन्दर जाने का आभास हो तो काम छोड़कर उसे तुरन्त खुली हवा मे आ जाना चाहिए। धूमक के लक्षण दिखाई देने पर प्राथमिक उपचार के पश्चात तुरन्त डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए।

(xiv) दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति को खुले स्थान में लिटाकर कृत्रिम श्वसन देना चाहिए तथा उसे आराम से लिटाए रखना चाहिए। ताकि हृदय पर जोर न पड़े। उस व्यक्ति को पैदल चलाकर कभी नही ले जाना चाहिए।

प्रचलित धूमक

1. एक्रिलोनाइट्राइल—यह बहुत प्रभावी, अत्यधिक ज्वलनशील तथा मँहगा धूमक है, इसका उपयोग खाद्यान्न, सूखे फल, सुपारी तथा तम्बाकू आदि पर सुरक्षित रहता है। छोटे पौधे तथा ताजा फलों के लिए यह अत्यन्त विषैला होता है। अनाज, सब्जी तथा फलों बीज के अंकुरण पर इसका कोई; बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। यह अत्यन्त विषैला है तथा इसका प्रभाव मुँह, चर्म तथा श्वास के माध्यम से होता है। अनाज तथा सूखे फलों पर उपयोग के लिए इसकी मात्रा 16–20 मि. ग्रा./लीटर तथा अनावृन काल 24–36 घण्टे होता है।

2. कार्बन डाइ सल्फाइड (CS_2)—यह भी अत्यन्त ज्वलनशील तथा मँहगा द्रवीय धूमक है। इसका उपयोग अब नहीं होता है। कार्बन टेट्राक्लोराइड के साथ मिलाकर उपयोग करने से इसकी ज्वलनशीलता कम हो जाती है। यह लिपिड तथा तेल में घुलनशील है अत: ऐसे पदार्थों में इसके अवशेष रह जाते हैं। खाद्यान्न तथा मधुमक्खी

के छत्तों की सुरक्षा के लिए इसका उपयोग किया जाता है, इससे अत्यन्त विषैली वाष्प निकलती है। इसका प्रभाव केन्द्रीय नाड़ी संस्थान तथा यकृत पर होता है। यदि मनुष्य 15 मि० ग्रा०/लीटर मात्रा के सम्पर्क में 30 मिनट से एक घण्टा तक रहे तो उसकी मृत्यु हो सकती है। अनाज पर उपयोग के लिए इसकी मात्रा 24–32 मि० ग्रा०/लीटर तथा अनावृत काल 24–36 तक होता है। वर्तमान में भारत मे इसका उपयोग नही होता है।

3. कार्बन टेट्राक्लोराइड (CCl_4)—यह अच्छी बेधन-क्षमता का द्रवीय धूमक है पर कीटों के लिए कम विषैला है इसीलिए प्रायः इसका उपयोग दूसरे धूमक के साथ मिश्रण के रूप में किया जाता है। इसके मिश्रण से धूमक की ज्वलनशीलता कम हो जाती है तथा बेधन क्षमता बढ़ जाने से धूमक अनाज के अन्दर तक जा सकता है। अकेले इसके उपयोग के लिए मात्रा 300–400 मि. ग्रा./लीटर तथा इसका अनावृत काल 10–14 दिन होता है। बीजों की अंकुरण क्षमता पर इसका कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता है। इसके अवशेष वसायुक्त पदार्थों मे पाये जाते हैं, परन्तु हवा के सम्पर्क मे आने, गर्म करने तथा पकाने पर इसके अवशेष समाप्त हो जाते हैं।

4. क्लोरोपिक्रिन (CCl_3NO_2)—यह द्रवीय धूमक है जिससे अत्यन्त उत्तेजनशील वाष्प निकलती है। इसके कारण आंसू आना, दम घुटना, खाँसी आना तथा उलटी जैसी क्रियाएँ होती हैं। इन्ही गुणों के कारण इसे अन्य धूमकों के साथ सूचक कारक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके 2.4 ग्राम/3 लीटर सांद्रता से मनुष्य की एक मिनट में मृत्यु हो जाती है। इसमें कीट एवं सूक्ष्म जीव नाशी गुण होते हैं। प्रायः इसका उपयोग पृथ्वी के अन्दर धूमन के लिए किया जाता है। अनाज के धूमन के लिए इसका उपयोग नही के बराबर होता है। इसकी मात्रा 24–30 मि० ग्रा०/लीटर तथा अनावृत काल 3–4 दिन होता है। धूमन के बाद अनाज को वातित करना आवश्यक होता है क्योंकि इसके अवशेष आसानी से समाप्त नही होते हैं। इसके अवशेष का दुष्प्रभाव आटा व पके भोजन पर भी हो सकता है। भारतवर्ष में इसका उपयोग मेथाइल ब्रोमाइड के साथ सूचक गैस के रूप मे होता है।

5. इथाइलीन डाइब्रोमाइड ($CH_2Br.\ CH_2Br$—अनाज, ताजे फल तथा भूमिगत धूमन के लिए यह एक अच्छा द्रवीय धूमक है। इसका उपयोग अकेले अथवा इथाइलीन डाइक्लोराइड/कार्बन टेट्राक्लोराइड/मेथाइल ब्रोमाइड के मिश्रण के साथ किया जाता है। इससे फलों का धूमन करने के बाद कीट ग्रसन समाप्त होने के अलावा फल और अधिक सुन्दर व ताजे दीखने लगते हैं। तेल युक्त पदार्थों के धूमन के लिए इसका उपयोग नही किया जाना चाहिए। वाष्प दाब कम तथा कीटों के लिए अधिक विषैला होने के कारण इसका उपयोग धान्यागारों तथा छाया मे रखी बोरियों के धूमन के लिए किया जाता है। इसकी मात्रा 32 मि० ग्राम/लीटर तथा इसका अनावृत काल 7 दिन है।

भारत में पहले इथाइलीन डाइक्लोराइड तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड (3:1) के मिश्रण का उपयोग बहुत किया जाता था लेकिन इथाइलीन डाइब्रोमाइड के आविष्कार के ब द इसका उपयोग समाप्त हो गया।

इथाइलीन डाइ ब्रोमाइड अधिक प्रभावी होने के साथ-साथ सस्ता भी पड़ता है। इससे अनाज की बोरियों का तारपोलीन अथवा पालाथीन की चद्दरों से ढककर प्रभावी ढंग से धूमन किया जा सकता है। इसके प्रभाव से कीटों के अण्डे भी नष्ट हो जाते हैं।

इस धूमक को सीधे अनाज के ऊपर न डालकर खाली बोरियों के ऊपर डाला जाता है। इसके अतिरिक्त धूमक को एक ही स्थान पर न डालकर कई स्थानों पर डाला जाता है ताकि विसरण प्रभावी हो। यदि तापमान 20°C से कम हो अथवा अनाज की मात्रा 1,000 टन से अधिक हो तो शीघ्र वाष्पीकरण तथा विसरण के लिए धूमक डाले गए स्थान पर पंखा द्वारा हवा संचारित की जाती है। खाद्यान्न भण्डारों के अतिरिक्त आटा मिलों मे भी कीट नियन्त्रण के लिए इस धूमक का 24 ग्राम/लीटर की दर से उपयोग किया जाता है।

घरों में उपयोग के लिए ई. डी. बी. शीशे के 3, 6 तथा 10 मि० ली० की शीशियों में मिलता है (चित्र—35) निस्पंदक पत्र (Filterpaper) में लिपटी हुई ये

चित्र 34. तारपोलीन की चद्दर से ढक कर धूमन

शीशियाँ कपड़े की थैली में सिली रहती है। उपयोग करते समय शीशी को तोड़ दिया जाता है जिससे धूमक धीरे-धीरे निकलता है। कपड़े की थैली में बन्द होने के कारण शीशे के टुकड़े अनाज में नहीं मिल पाते। तेज गंध के कारण हवा में इसकी पहचान आसानी से हो जाती है अत: अज्ञानवश इससे सम्पर्क होने की सम्भावना नहीं रहती।

यह रसायन वसा तथा स्टार्च द्वारा अवशोषित हो जाता है जो हवा के सम्पर्क मे आसानी से नहीं निकल पाता। गर्म करने अथवा पकाने से इसका अवशेष समाप्त हो जाता है। फार्म तथा घरो में उपयोग के लिए इसकी मात्रा 3 मिली/0.25 टन, 10 मि० ली०/0.5 टन तथा 20 मि. ली. टन है। गोदाम आदि में व्यावसायिक स्तर पर इसकी मात्रा हवा रोधी भण्डार में 24–32 मि० ग्रा०/लीटर, अनावृत काल 7 दिन तथा तारपोलीन से ढक कर धूमन के लिए 32–40 मि० ग्रा०/लीटर व अनावृत काल 7 दिन है। यदि अनाज ढेर मे रखा गया हो तो इसकी मात्रा 500 मि० ली०/20 टन तक उपयोगी पाई गई है। बीजों की अंकुरण क्षमता पर इसका कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता है।

आटा मिलों के धूमन के लिए इसकी मात्रा 32 मिग्रा/लीटर तथा अनावृत काल 72 घंटे हैं। खाद्यान्न उद्योगो द्वारा कीट ग्रमन रोकने के लिए इसका उपयोग खाली,बोरियों को उपचारित करने के लिए 48 मि० ग्रा०/लीटर तथा अनावृत काल 3 दिन की दर से किया जाता है।

भारतीय मानक संस्थान ने ई डी. बी. को धूमक के रूप मे उपयोग के लिए विनिर्देश जारी किया है।

6 मेथाइल ब्रोमाइड CH_3Br (MBr)—यह भारतवर्ष मे अत्यन्त प्रचलित धूमक है इसका उपयोग मुख्य रूप से प्लान्ट क्वेरेन्टीन में होता है। खाद्यान्न, आटा, सूखे फल, तिलहन, मसाले, तम्बाकू आदि का धूमन इसके द्वारा किया जाता है। इसके द्वारा धूमन पूर्ण रूप मे हवा रोधी स्थान मे तथा कभी-कभी समानीत दाब पर भी किया जाता है। क्वेरेन्टीन के अन्तर्गत इसके द्वारा ताजे फल, पौधों तथा सब्जियों का भी धूमन किया जाता है। यह गैसीय धूमक 1,5, 30 तथा 80 किग्रा. के सिलिन्डर्स मे मिलता है।

इसका उपयोग 2 से 2.5 प्रतिशत क्लोरोपिक्रिन के साथ अथवा उसके बिना भी किया जा सकता है। प्रचालक को हानि की दृष्टि से इस रसायन में क्लोरोपिक्रिन का मिश्रण करना चाहिए। इसमे वेधन-शक्ति अधिक होती है तथा इसका स्वभाव नीचे की ओर जाने का होना है। इसी स्वभाव के कारण इसके द्वारा ऊपरी तह की तुलना मे नीचे की तह मे कीट-नियन्त्रण अधिक प्रभावी होना है। अतः समुचित कीट-नियंत्रण के लिए इसका उपयोग इथाइलीन डाइब्रोमाइड (70:30) अथवा क्लोरोपिक्रिन (95:5) के साथ करना चाहिए। इसकी मात्रा खाद्यान्न के लिए 32 मि. ग्रा०/लीटर, 48 घण्टे अनावृत काल तथा 48 मि० ग्रा०/लीटर, 48 घण्टे अनावृत काल होती है। चूंकि इसकी क्रिया धीरे होती है अतः धूमन समाप्त होने के बाद भी इसके द्वारा प्रभावित कीट मरते रहते हैं।

यह धूमक मुख्यतः खाद्यान्न के प्रोटीन तत्वों मे क्रिया करता है। हालांकि इस प्रकार की क्रिया से खाद्यान्न के पोषक तत्वों पर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता है। इसके द्वारा धूमित गेहूँ के आटे से बनायी गयी रोटी मे कुछ विशेष प्रकार की गंध आती हैं लेकिन यह गंध ऐसी नही होती जिसे उपभोक्ता पहचान सके, इसके उपयोग के समय प्रचालक को पीली पट्टी सहित मास्क अवश्य पहनना चाहिए।

7. इथाइलीन डाइक्लोराइड ($CH_2Cl \cdot CH_2Cl$)—यह अत्यन्त ज्वलनशील द्रवीय धूमक है अतः बहुत कम अकेले उपयोग किया जाता है। प्रायः इसे कार्बन टेट्राक्लोराइड के साथ आयतन के आधार पर 3:1 के अनुपात मे अथवा इथाइलीन डाइब्रोमाइड के साथ 95:5 के अनुपात मे प्रयोग किया जाता है। इससे बीजों पर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता तथा घर व फर्म पर इसका उपयोग किया जा सकता है।

इसकी मात्रा ढके हुए स्थान मे 320 से 480 मि० ग्रा०/लीटर, अनावृत काल 72 घण्टे तथा हवारोधी कोष्ठों मे 240 से 320 मि० ग्रा०/लीटर व अनावृत काल 7 दिन, होती है। पिसे हुए पदार्थों, तिलहन, तम्बाकू आदि के धूमन के लिए यह ठीक नही रहता। हवा मे इसकी अधिकतम स्वीकार्य सीमा 50 भाग प्रति दस लाख है।

8 इथाइलीन ऑक्साइड (C_2H_4O)—इस गैसीय धूमक का उपयोग निर्वात धूमन मे कार्बन डाइआक्साइड अथवा अज्वलनशील हैलोजनित हाइड्रोकार्बन के साथ किया जाता है ताकि विस्फोटक स्थिति उत्पन्न न हो। खाद्य पदार्थों के लिए निर्वात धूमन मे इसकी मात्रा 100 ग्राम/घन मीटर, अनावृत काल 3 घण्टे है। यह अवशेष नही छोड़ता तथा इसका उपयोग तम्बाकू व काफी के लिए सुरक्षित रहता है। पकाने पर कोई बुरा प्रभाव नही पडता लेकिन अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

9. हाइड्रोजन सायनाइड (HCN)—भारत मे इसका उपयोग खाद्यान्न के धूमन के लिए बहुत कम पर चूहों की बिलों के धूमन के लिए प्रायः किया जाता है। दूसरे देशो मे पहले इसका उपयोग अनाज, सूखे फलो, आटा, तम्बाकू आदि के धूमन के लिये किया गया, पर अन्य अच्छे धूमको की खोज से अब इन कार्यों के लिए इसका उपयोग समाप्त हो गया है।

हाइड्रो सायनिक एसिड गैस (साइनो गैस) या तो सिलिन्डर्स मे बन्द हाइड्रोजन सायनाइड द्रव से प्राप्त की जाती है अथवा सोडियम, पोटैशियम सायनाइड को सल्फ्यूरिक अम्ल से क्रिया कराके अथवा कैल्शियम सायनाइड से प्राप्त की जाती है।

इसकी मात्रा 8–16 मि० ग्रा०/लीटर, अनावृत काल 24 घण्टे है। [illegible] घुलनशील होने के कारण यह नम पदार्थों द्वारा शोषित हो जाता है। [illegible] स्वीकार्य सीमा 10 भाग प्रति दस लाख है। हाइड्रोजन सायनाइड [illegible] है। इसका विष शरीर में श्वास के अलावा त्वचा द्वारा भी [illegible] इसके द्वारा मृत्यु का कारण [illegible] का [illegible] है।

10. फास्फीन (हाइड्रोजन फास्फाइड PH_3)—[illegible] मैग्नीशियम फास्फाइड, जिंक फास्फाइड, [illegible] है। भारतवर्ष में [illegible] [illegible] के [illegible] है।

एक गोली से एक ग्राम गैस निकलती है। इन गोलियों में ज्वलनशीलता को कम करने के लिए अमोनियम कार्बोनेट मिला रहता है। एल्यूमीनियम फास्फाइड के नमी के सम्पर्क में आने पर फास्फीन गैस निकलती है। इसके निकलने के साथ ही साथ
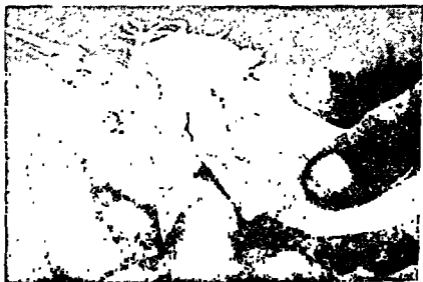
चित्र— 35. इथाइलीन डाइब्रोमाइड का ऐम्पूल

ज्वलनशीलता को रोकने के लिए अामोनिया तथा कार्बन डाइआक्साइड गैसें निकलती हैं।

हवा रोधी भण्डारों अथवा तारगोलीन से ढकी बोरियों (चित्र—34) के धूमन के लिए इसकी मात्रा 2 तीन ग्राम की गोलियाँ/टन तथा घर, फार्म अथवा साइलो में धूमन के लिए इसकी मात्रा एक तीन ग्राम की गोली/टन तथा अनावृत काल 7 दिन है। गोलियाँ रखने के 1–2 घण्टे बाद फास्फीन गैस निकलनी शुरू होती है। चूहों की बिलों के धूमन के लिए इसकी मात्रा 1 तीन ग्राम की गोली प्रति बिल है।

भारत में यह अत्यन्त प्रचलित धूमक है तथा इसका उपयोग चूहा नियंत्रण के अलावा, खाद्यान्न, आटा, तिलहन, मसाला, पाउडर का दूध आदि के धूमन के लिए किया जाता है।

फॉस्फीन शरीर में एकत्रित होती रहती है तथा 2–8 मि० ग्रा० फास्फीन/लीटर थोड़े ही समय में मनुष्य के लिए घातक हो सकती है। फास्फीन के लिए प्रभाव सीमा 0.4 मि. ग्रा०/लीटर है।

फॉस्फीन से उपचारित पदार्थ में तीन प्रकार के अवशेष पाए जा सकते हैं—

(i) स्वयं फॉस्फीन
(ii) एल्यूमीनियम फॉस्फाइड (अनअभिक्रित)
(iii) एल्यूमीनियम हाइड्रॉक्साइड जो एल्यूमीनियम फॉस्फाइड की पानी की क्रिया से प्राप्त होता है।

ऐसा पाया गया है कि संस्तुत मात्रा से 3–4 गुना अधिक मात्रा के उपयोग के बाद भी फॉस्फीन के महत्वपूर्ण अवशेष नहीं पाये गये हैं। इसके अवशेष अनाज के परिवहन, सुखाने व धोने से समाप्त हो जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि सगठन तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के संयुक्त समिति की राय है कि फॉस्फीन से उपचारित पदार्थ को उपभोग से पहले भली प्रकार साफ कर लेना अथवा धो लेना चाहिये।

एल्यूमीनियम फॉस्फाइड की गोली में 55 प्रतिशत एल्यूमीनियम फॉस्फाइड, 40 प्रतिशत अमोनियम कार्बोनेट तथा 5 प्रतिशत एल्यूमीनियम ऑक्साइड होता है। कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा अमोनिया अमोनियम कार्बोनेट से निकलती है।

11. डाइक्लोरवॉस (D D.V.P.) $(CH_3O)_2$ $POOCHCCl_2$ 2,2 डाइक्लोरो वेनाइल डाई मेथाइल फॉस्फेट—यह साधारणतः स्पर्श कीटनाशी है, लेकिन इसका उपयोग खुले स्थान में संचित अनाज में कीट ग्रसन रोकने के लिए भी किया जाता है। धूमक के रूप मे इसका उपयोग बहुत कम होता है। खाली भण्डारों, रेल के डिब्बे आदि में कीट-पतंगों को मारने के लिए इसका उपयोग अधिक होता है। तम्बाकू के गोदाम मे पतंगो तथा सिगरेट भृंग के नियन्त्रण के लिए इसका उपयोग अधिक किया जाता है। यह अज्वलनशील तथा जल मे घुलनशील है। इसका शोषण त्वचा द्वारा आसानी से हो सकता है। अतः थोड़ी-सी मात्रा भी शरीर पर पड़ जाने पर उपचार आवश्यक होता है। उपयोग के लिए इसकी मात्रा एक माइक्रोग्राम/लीटर अथवा एक मि. ग्रा./घन मीटर है।

12. सल्फ्यूरिल फ्लोराइड (SO_2F_2)—यह गन्धहीन गैस है, अतः इसका उपयोग क्लोरोपिक्रिन को सूचक गैस के रूप में मिलाकर करना चाहिये। मनुष्य के लिए यह अत्यन्त विषैली तथा घातक होती है। इसका उपयोग खाद्य-पदार्थों, उनसे बनी वस्तुएँ तथा पौधों आदि के धूमन के लिए नही करना चाहिये। इसका उपयोग मुख्य रूप से सूखी लकड़ी मे कीट ग्रसन होने पर किया जाता है।

इनके अलावा एजोबेन्जीन, क्लोरोफार्म तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड भी धूमक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। एजोबेन्जीन पौध घरों मे बरूथी के नियन्त्रण के लिए उपयोगी पाया गया है। क्लोरोफार्म कीटों के लिए बहुत अधिक विषैला नही है, पर अज्वलनशील है। इसे कभी-कभी एथाइलीन डाई-ब्रोमाइड तथा कार्बन-डाई-सल्फाइड के साथ उपयोग में लिया जाता है।

कार्बन-डाई-ऑक्साइड वातावरण मे स्वतन्त्र रूप से पाई जाने वाली गैस है। अतः इसे विषैला धूमक नहीं कहा जा सकता। अनाज के भण्डारों में इसकी मात्रा अधिक होने पर कीट मर जाते हैं। इसका उपयोग अन्य धूमकों की ज्वलनशीलता कम करने के लिए भी किया जाता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके उपचार के बाद अवशेष की कोई समस्या नहीं रहती।

□□□

7
गृहवासी नाशक जीव

गण (Order)—अकेराइना (Acarina)

1. खुजली वाली बरुथी–सर्कोप्टेस स्केबी (Sarcoptes Scabiei De Geer)
(चित्र 36)

कुल—सर्कोप्टिडी (Sarcoptidae)
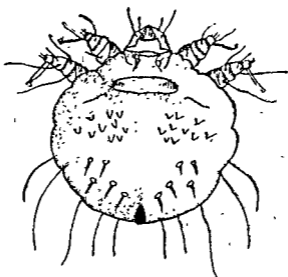
चित्र 36 खुजली वाली बरुथी- सर्कोप्टेस स्केबी

यह मनुष्य तथा जानवरों जैसे—कुत्ता, गाय, भैंस, सुअर, भेंड़, बकरी, ऊँट, घोड़ा, खरगोश आदि पर परजीवी होती है। इसकी कई जैव प्रजातियाँ हैं जो रचना तथा आकार में समान होते हुए भी परस्पर भिन्न-भिन्न जन्तुओं पर आक्रमण करती हैं। उदाहरण के लिए—घोड़े पर पाई जाने वाली प्रजाति मनुष्य पर स्थायी रूप से नहीं रह सकती।

ग्रसन—नई गर्भवती मादा अपने पोषी जन्तु पर पहुँचकर लगभग एक घण्टे में कठोर त्वचा के अन्दर प्रवेश कर जाती है। यह अपने चूसकों द्वारा त्वचा को पकड़े रहती है तथा मुखांगों व पादों की सहायता से त्वचा को काटती है। प्रायः मादा अपना जीवनकाल त्वचा के अन्दर बनाए गए छेद/बिल मे ही व्यतीत करती है तथा कभी-कभी लगभग तीन सप्ताह के बाद बाहर आ जाती है। छेद बनाने के लगभग एक घण्टे के अन्दर मादा अण्डे देना शुरू कर देती है, दो-तीन दिन के अन्तराल से लगभग 2–3 माह तक अण्डे दिये जाते हैं। धीरे-धीरे यह अपने निवास छिद्र, बिल (Burrow) को बड़ा करती रहती है। मुलायम त्वचा के ऊपर एक पिण्डक सा बन जाता है, लेकिन कठोर त्वचा में ऐसा नहीं होता।

अण्डे 3–8 दिन मे फूट जाते हैं। उनसे डिम्भक बाहर निकलकर भोजन व शरण के लिए इधर-उधर घूमना शुरू कर देते हैं। डिम्भक तथा शिशु त्वचा पर पुटक (follicle) के अन्दर पाये जाते हैं। अण्डों के फूटने के 4–6 दिन बाद अप्रौढ़ नर तथा मादा निकलते हैं। नर संख्या में बहुत कम होते हैं तथा त्वचा पर छोटे-छोटे बिलों में रहते हैं। ये प्रायः त्वचा पर अप्रौढ़ मादा की खोज मे घूमते रहते हैं। हालांकि बिल अनिशेचित मादा बनाती है, परन्तु नर-मादा त्वचा के ऊपर ही सम्भोग करते हैं। दस प्रतिशत अण्डे ही प्रौढ बन पाते हैं।

बरुथी जब त्वचा को बिल बनाने के लिए काटती है तो बहुत तेज खुजली मचती है। इसके काटने तथा खुजलाने के कारण उस स्थान पर लाल चकत्ता-सा बन जाता है। इसके लक्षण काँख, कमर, टखने तथा जाँघ पर पाये जाते हैं। इसके कारण खुजली (Scaties)/पामा नामक बीमारी हो जाती है। खुजलाने के कारण द्वितीयक संक्रमण भी हो सकता है, जो पामा से भी अधिक घातक हो सकता है। इसकी विभिन्न जातिया जैसे—**सर्कोप्टेस स्केबी-केनिस, स० स्केबी-सुइस** (Suis), **स० स्केबी-ग्रोविस** (Ovis) तथा **स० स्केबी केपरी** (Caprae) क्रमशः कुत्ता, सुअर, भेड तथा बकरी पर परजीवी हैं। अधिक ग्रसन होने पर पोषी जन्तु की मृत्यु भी हो सकती है।

कुछ परजीवी बरुथी, उनके पोषी जन्तु तथा उनके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली बीमारियां नीचे दी गई हैं—

क्रम संख्या	बरुथी का नाम	कुल	पोषी जन्तु	बीमारी का नाम
1.	नोटोड्रेस कैटाई (Notoedres cati)	सर्कोप्टिडी	बिल्ली	खाज (Mange)
2.	नेमिडोकोप्टेस मुटेंस (Knemidokoptes mutans)	,,	मुर्गी व घरेलू चिड़िया	स्केली लेग (Scaly leg)

नियन्त्रण–मैलाथियान ई. सी. 0.5 प्रतिशत का छिड़काव अथवा 5 प्रतिशत मैलाथियान चूर्ण का 450 ग्राम प्रति 50 वर्गफीट क्षेत्रफल की दर से फर्श पर छिड़काव करना प्रभावी होता है।

2. गाय, भैंस की किलनी/कुटकी—हायलोमा एनाटोलिकम (Hyalomma anatolicum Canestrini) (चित्र 37) तथा बूफिलस माइक्रोप्लस Boophilus microplus)

कुल—इक्सोडिडी (Ixodidae)
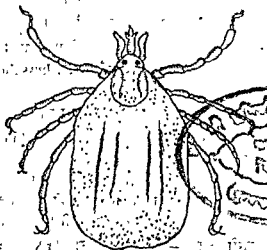
चित्र 37. गाय-भैंस की किलनी-हायलोमा

ये गाय, भैंस, भेड़, बकरी तथा घोड़ा पर लगने वाले महत्त्वपूर्ण परजीवी है। इनके डिम्भक, शिशु तथा प्रौढ़ तीनों ही पोषी जन्तु का रक्त चूसकर क्षति पहुँचाते है। डिम्भक के तीन जोडी तथा शिशु व प्रौढ के चार-चार जोड़े पैर होते हैं। इनका आकार 2 5×1.5 मि० मी० होता है। खून पी कर फूल जाने से इनका आकार काफी बहुत बढ जाता है।

इनका प्रसन प्राय: त्वचा के कोमल भागों जैसे—कान के पास, थन तथा पूँछ के शरीर से जुड़ने के स्थान पर नीचे की ओर होता है। इनका सिर त्वचा मे घुसा रहता है तथा ये रक्त चूसते हैं। रक्त चूसने के अतिरिक्त ये किलनी ज्वर तथा टैक्सास ज्वर आदि बीमारियाँ भी फैलाते हैं।

जीवन-इतिहास—प्रौढ नर-मादा पोषी के शरीर पर सम्भोग करते हैं। पूर्ण रूप से रक्त चूसकर फूल जाने के बाद प्रौढ पृथ्वी पर गिर जाते हैं। मादा, मकान के अन्दर छेद, दरार तथा मिट्टी में अण्डे देती है। अण्डों का ऊष्मायन-काल 2 से 6 सप्ताह होता है। अण्डों से निकलकर डिम्भक समुचित पोषी पाकर उसके शरीर

से चिपक जाते हैं। **बूफिलस माइक्रोप्लस** जो एक ही पोषी पर जीवन-निर्वाह करता है। उसी पर शिशु तथा प्रौढ़ में विकसित हो जाता है। **हायलोमा एनाटोलिकम** तीन पोषियों पर विकसित होता है। यह गाय, भैंस, बकरी, ऊँट, गधा तथा घोड़े पर परजीवी है। इसके डिम्भक 4–7 दिन तक पोषक का रस चूसने के बाद पृथ्वी पर गिरकर शिशु मे परिवर्तित हो जाते हैं। ये शिशु पुनः किसी अन्य जन्तु पर चिपक जाते हैं। उस पर लगभग 15 दिन तक रहने के बाद पुनः पृथ्वी पर गिर कर प्रौढ़ मे विकसित हो जाते हैं। ये प्रौढ़ किसी अन्य जन्तु पर चिपक जाते हैं और वही अपना जीवन पूरा करते हैं। इनका जीवन-चक्र 3–5 सप्ताह मे पूरा होता है। ये वर्ष भर सक्रिय रहते हैं तथा एक वर्ष मे इनकी कई पीढ़ियाँ होती है।

गाय, भैंस पर पाई जाने वाली **हायलोमा इसाकी (H. isaaci)**, **हा० फेरोजडिनी (H. ferozedini)** तथा **हा० हुसैनी (H. hussaini)** आदि अन्य प्रजातियाँ हैं।

नियन्त्रण—1. इन्हें हाथ से खींचकर हटाया जा सकता है।

2. प्रभावित स्थानो पर लिण्डेन/कार्बेरिल/मैलाथियान एक प्रतिशत चूर्ण लगाने से भी ये नष्ट हो जाते हैं।

3. जानवरों के रहने के स्थान की दीवारों व छत पर मैलाथियान 3% अथवा कार्बेरिल 2% का छिड़काव करने से भी नियन्त्रण हो सकता है। छिड़काव करते समय ध्यान रहे कि कीटनाशी छेरो व दरारों में भली प्रकार प्रवेश कर जाये।

3. मुर्गा की किलनी/कुटकी—अर्गस पर्सिकस (Argas persicus oken)

कुल—अर्गेसिडी (Argasidae)

यह मुर्गा, टर्की, तीतर, बतख तथा कबूतर आदि पर परजीवी है। इसके ग्रसन से पक्षी कमजोर हो जाते हैं तथा अण्डे कम देते हैं। इसके अलावा इससे स्पाइरोकीटोसिस (Spirochaetosis) नामक बीमारी भी फैलती है जिसका कारण **स्पाइरोकीटा एन्सेरिना (Spirochaeta anserina)** है। इसके शिशु तथा प्रौढ दिन मे मकान के छेद तथा दरारों में छिपे रहते हैं तथा रात्रि को बाहर आकर खून चूसते हैं। लेकिन डिम्भक पूर्ण विकसित होने तक पोषी के शरीर पर ही चिपके रहते हैं।

जीवन-इतिहास—मादा किलनी छेदो अथवा दरारों मे 30–100 अण्डे झुण्ड मे देती है। एक मादा 900 अण्डे दे सकती है। मौसम के अनुसार अण्डो से 10-90 दिन मे फूटकर डिम्भक निकलते हैं। लगभग 7 दिन में डिम्भक पृथ्वी पर गिरकर प्रथम शिशु मे परिवर्तित हो जाता है। कुछ ही दिनो मे यह पुनः पोषी के शरीर से चिपक जाता है तथा थोड़े ही समय बाद खून चूसकर फूल जाता है और पुनः जमीन पर गिर जाता है। इसके बाद यह द्वितीय डिम्भक अवस्था मे परिवर्तित हो जाता है, जो 2–3 घण्टे तक पोषक का खून चूसने के बाद पुनः जमीन पर गिर

जाता है। यह लगभग 15 दिन में प्रौढ में विकसित हो जाता है। मादा अच्छी तरह खून पीने के बाद ही अण्डे देना शुरू करती है। इसका जीवन-चक्र लगभग 5-6सप्ताह में पूर्ण हो जाता है। प्रौढ़ बहुत मजबूत होते हैं तथा बिना भोजन के भी तीन वर्ष तक जीवित नही रह सकते हैं।

नियन्त्रण—1. मैलाथिआन 3 प्रतिशत या कार्बेरिल 2 प्रतिशत का छिड़काव पक्षिओ के रहने के स्थान, दीवार, दरवाजे, खिड़कियों आदि पर भली प्रकार करने से इनका नियंत्रण हो जाता है। कीटनाशी दीवार की दरारों तथा अन्य छिद्रों, छिपने के स्थानो में प्रवेश कर जाने चाहिए।

2. ग्रसित पशु-पक्षियों के शरीर पर मैलाथिआन चूर्ण मसलने से भी इनका नियन्त्रण सम्भव है।

गण-एनोप्लूरा (Anoplura)

यूका/नूँ (i) शरीर यूका—पेडीकुलस ह्यूमैनस कार्पोरिस (Pediculus humanus corporis de Geer); (ii) सिर यूका—पेडीकुलस ह्यूमैनस कैपिटिस (P. humanus Capitis Linn) (चित्र 38) (iii) क्रैब यूका—प्थिरस प्यूबिस (Phthirus pubis Linn) (चित्र 39)

कुल—पेडीकुलिडी (Pediculidae)
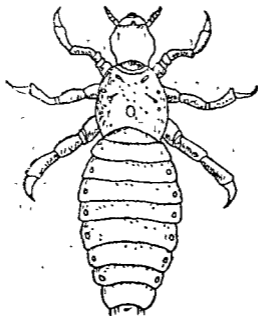
चित्र 38 सिर यूका-
पेडीकुलस ह्यूमैनस कैपिटिस
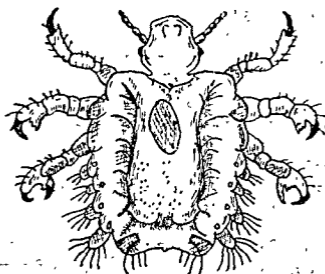
चित्र 39 क्रैब यूका - थिरस प्यूबिस

ये आकार मे छोटे लगभग 1.5 से 4.00 मि० मी० लम्बा, 0.7 से 2.00 मि. मी. चौड़ा, सफेद मिश्रित सलेटी रंग के चपटे, पंखहीन कीट होते हैं। इनके पैर के अन्त मे शक्तिशाली नखर (claw) होते हैं, जिनसे ये पोषी के बाल से चिपक जाते है।

ये मनुष्य के रक्त पर परजीवी हैं तथा प्राय: गंदी बस्तियों, मिलिट्री के बैरकों, जेल व अनाथालयों मे पाए जाते है। इनकी तीनों प्रमुख जातियों में पेडीकुलस ह्यूमैनस कैपिटिस त्वचा तथा बाल के शिरोवल्क से चिपका हुआ; पे. ह्यूमैनस कार्पोरिस शरीर के सम्पर्क मे रहने वाले कपड़ों में तथा थिरस प्यूबिस जघन भाग (Pubic region)के बालों में चिपका हुआ पाया जाता है।

ये कीट एपीडेमिक टाइफस, ट्रेन्च ज्वर, रिलैप्सिंग ज्वर आदि बीमारियाँ फैलाते हैं। टाइफस तथा ट्रेन्च ज्वर रिकेट्सिया प्रोवाजेकी (Rickettsia prowazeki) तथा रि. क्विटाना (R.quintana) द्वारा तथा रिलैप्सिंग ज्वर एक स्पाइरोकीट (Spirochaete) द्वारा फैलता है। रोग-ग्रसित पोषी का रक्त चूसने पर यूका के अन्दर रिकेटसिया के कीटाणु आ जाते हैं जिनकी संख्या इसकी आहार नाल मे बढ़ती रहती है। मल-त्याग के साथ ये बाहर निकल जाते हैं। रक्त चूसने अथवा अन्य किसी छिले हुए स्थान पर इस मल के मिलने के कारण स्वस्थ पोषी भी ग्रसित हो जाता है। स्पाइरोकीट का संक्रमण कीटाणु युक्त यूका के पिस जाने के कारण उससे निकले हुए द्रव को छिली हुई त्वचा पर मिलने के कारण होता है।

जीवन-इतिहास—सिर यूका की मादा 8–10 अण्डे प्रतिदिन की दर से लगभग 50–100 अण्डे देती है, अण्डे सिर के बालों से चिपके रहते हैं। शरीर यूका 200–300 अण्डे देती है तथा इसके अण्डे कपड़ों की सिलाई वाली जगह पर पाए जाते हैं। लगभग एक सप्ताह मे अण्डो से शिशु निकलते हैं जो तुरन्त रक्त चूसना शुरू कर देते हैं। तीन बार निर्मोक परिवर्तन के बाद एक से चार सप्ताह के अन्दर ये प्रौढ़ बन जाते हैं। प्रौढ़ का जीवन काल लगभग एक माह होता है।

नियंत्रण—1. प्रतिदिन स्नान तथा कपड़ों की समुचित धुलाई करने से इनका आक्रमण नहीं होता है।

2. इनसे छुटकारा पाने के लिए मैलाथिआन 2 प्रतिशत अथवा लिन्डेन एक प्रतिशत चूर्ण का उपयोग लाभदायक होता है। सिर यूका के नियंत्रण के लिए मैलाथिआन 5 प्रतिशत चूर्ण का उपयोग 10 दिन के अन्तराल से अथवा लिन्डेन 0·2% को सिर में लगाने वाले तेल में मिलाकर लगाना लाभप्रद होता है।

3. शरीर यूका से ग्रसित कपड़ों का मेथाइल ब्रोमाइड अथवा इथाइलीन डाइ ब्रोमाइड से धूमन करना चाहिए, धूमन 2–3 बार करना चाहिए ताकि बाद में अण्डों से निकलने वाले शिशु भी मर जांय।

गण-कोलिओप्टेरा (Coleoptera)

(1) कार्पेट भृंग—ऐटेजीनस (Attagenus) एवं ऐन्थ्रेनस (Anthrenus)

कुल—डर्मेस्टिडी (Dermestidae)

इन्हें बालदार भालू (woolybears), त्वचा भृंग (Skin beetles) अथवा भैंस भृंग (Buffalo beetles) के नाम से भी जाना जाता है। इनके मुखांग काटने-चबाने वाले होते हैं। जन्तु-उत्पादों से युक्त पदार्थ जैसे ऊन, बाल, फर, पंख, चमड़े के बने सामान, सींग के सामान, रेशम, सुरक्षित रखे हुए कीट व अन्य जन्तु, रेयान, लिनेन तथा जूट के सामान इनके द्वारा क्षतिग्रस्त होते हैं।

इसकी प्रमुख जातियां ऐटेजीनस पीसियस (Attagenus piceus) (चित्र 40) तथा ऐ. ग्लोरिओसी (A. gloriosae) हैं। ये काले भृंग (Black beetles) कहलाते हैं। इनका शरीर हल्के काले रंग का लगभग 3–4 मि० मी० लम्बा होता है। इनके डिम्भक सुनहले रंग, गाजर के आकार के कटीले तथा लगभग 12 मि० मी० लम्बे होते हैं। इनसे संग्रहालय में रखे सूखे कीड़ों को बहुत क्षति होती है।

अन्य प्रजातियां ऐन्थ्रेनस फ्लैवीपेस (Anthrenus flavipes (= vorax) (चित्र 41) तथा ऐ. कोलोरेटस (A. coloratus) धब्बेदार भृंग (Spotted carpet beetles) कहलाते हैं। इनके डिम्भक गोंएदार, लाल लिए हुए कत्थई रंग के, शरीर के आर-पार अनुप्रस्थ रंगीन धारियों से युक्त लगभग 6 मि० मी० लम्बे होते हैं। इनके क्षति का प्रकार तथा क्षतिग्रस्त पदार्थ काले भृंग जैसे ही होते हैं।
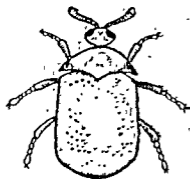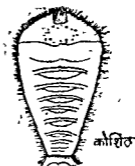
चित्र 40. कार्पेट भृंग - ऐंटेजीनस पीसियस

जीवन-इतिहास—मादा भृंग ऐसे पदार्थों पर, जिन पर डिम्भक जीवित रहता है। अंधेरे स्थान में, सफेद, लम्बे अंडाकार अण्डे देती है। अण्डे लम्बे तार जैसी रचना के सहारे किसी पदार्थ से जुड़े रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति मे, लगभग एक सप्ताह मे अण्डो से फूट कर डिम्भक निकलते हैं। इनका शरीर लम्बा, अंडाकार तथा बालों से युक्त होता है, क्षति डिम्भक ही करते हैं, जिसके कारण कपड़ों में गोल छेद हो जाते, हैं ये प्रायः अंधेरे स्थान मे रहते हैं। डिम्भक काल लगभग 6 माह होता है। डिम्भक के निर्मोक को देखकर प्रायः जीवित डिम्भक का आभास होता है। डिम्भक काल ताप तथा उपलब्ध भोजन पर निर्भर करता है। कोशित काल 1–2 सप्ताह होता है। जीवन-चक्र परिस्थिति के अनुसार एक वर्ष से भी कम समय से
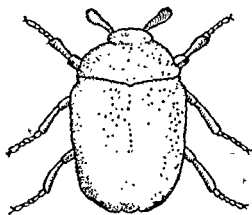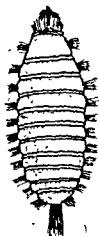
चित्र 41. कार्पेट भृंग- ऐन्थ्रेनस

लेकर तीन वर्ष मे पूरा हो सकता है। प्रौढ़ भृंग का जीवन-काल 2–5 सप्ताह होता है। गर्मी के दिनों मे ये अधिक पाये जाते हैं। भृंग घर में कोई क्षति नहीं करते तथा प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं। प्राय: खिड़कियो पर अथवा बाहर फूलों के पराग कण खाते हुए देखे जा सकते हैं।

नियंत्रण—1. संग्रहालय मे रखे हुए कीट, जन्तु तथा अन्य पदार्थों को डिब्बे में बन्द करके नैपथेलीन की गोलियाँ रखकर सुरक्षित रखा जा सकता है।

2. घरों में बिछे हुए कार्पेट, दरी, ऊनी कम्बल व पहनने के कपड़ों को कड़ी धूप में सुखाकर डडे से पीटने तथा ब्रश से साफ करने से भी ये नष्ट हो जाते हैं।

3. अधिक प्रकोप होने पर पूरे कक्ष को ही कार्बनडाइ-सल्फाइड तथा हाइड्रोजन सायनाइड से धूमित करना चाहिए।

4. यदि धूमन सम्भव न हो तो एक प्रतिशत डी. डी. टी./लिन्डेन/क्लोरडेन/पाइरेथ्रम को गंधहीन मिट्टी के तेल मे मिलाकर दीवारों तथा फर्श पर छिड़काव करना चाहिए।

(2) फर्नीचर भृंग—हीटरोबोस्ट्राइकस एक्वेलिस (Heterobostrychus aequalis), लिक्टस अफ्रिकेनस (Lyctus africanus) तथा डिनोडेरेस (Dinoderus sp.)

कुल—बॉस्ट्रिकिडी (Bostrychidae)

लकड़ी के सामान को क्षति पहुँचाने वाला प्रमुख भृंग हीटरो बोस्ट्राइकस एक्वेलिस है। यह काला व गोलाकार होता है तथा लकड़ी के पैकिंग के डिब्बे, संदूक, कपाट,

मेज, कुर्सी, घरों मे लड़की को फिटिंग आदि में छेद करके क्षति पहुँचाता है। भृंग तथा डिम्भक दोनो ही क्षति पहुँचाते हैं।

जीवन-इतिहास—प्रायः बरसात प्रारम्भ होने पर भृंग लकड़ी से बाहर निकलते हैं। मादा भृंग खुरदरी लकड़ी अथवा, लकड़ी में बने विशेष प्रकार के छेद मे अण्डे देती है। नवजात डिम्भक लकड़ी के अन्दर छेद करके अन्दर घसा जाता है। बाद मे यह छिद्र लकड़ी के बारीक चूर्ण द्वारा बन्द कर दिया जाता है। पूर्ण विकसित डिम्भक लगभग 15 मि० मी० लम्बा होता है। कोशित लकड़ी के अन्दर ही बनता है। कोशित से निकलने के पश्चात् कुछ समय तक भृंग अन्दर ही अन्दर लकड़ी को खाता है तथा बाद मे स्वयं द्वारा निर्मित छिद्र से बाहर निकलता है। जीवन-काल परिस्थिति के अनुसार 1–6 वर्ष मे पूरा होता है।

लिक्टस अफ्रिकेनस—इसे पाउडर पोस्ट बीटल भी कहते हैं। यह भारत में सर्वाधिक पाया जाता है तथा हर प्रकार की लकड़ी व उससे बनी सामग्री को क्षति पहुँचाता है। यह हल्के कत्थई रंग का 2-4 मि० मी० लम्बा होता है। इसके डिम्भक लकड़ी को आटा के रूप मे बदल देते हैं।

इसकी अन्य जातियाँ लि. पीसियस (चित्र 42), लि. रिपनीफार्मेस (चित्र 43) तथा लि. ब्रूनियस आदि हैं।

चित्र 42 फर्नीचर भृंग-लिक्टस पीसियस

जीवन-इतिहास—मादा भृंग लकड़ी के ऊपर छोटे-छोटे छेदों में अण्डे देती है। एक छेद मे एक से अधिक अण्डे हो सकते हैं। अण्डा एक सिरे पर गोल तथा दूसरी ओर एक तार के रूप मे बढ़ा हुआ होता है। अण्डो का ऊष्मायन काल 1-2 सप्ताह होता है। डिम्भक लकड़ी मे छेद करके अन्दर घुमता जाता है तथा सुरंग को और अधिक चौड़ा कर देता है। मल के रूप मे निकाला गया लकड़ी का चूर्ण सुरंग मे ही जमा रहता

भृंग

भृंगक

चित्र 43 फर्नीचर भृंग-
लिक्टस स्पिनीफार्मेस

है। पूर्ण विकसित डिम्भक लकड़ी की सतह की ओर आकर सुरंग के अन्दर ही कोशित मे परिवर्तित हो जाता है। कोशित से निकला हुआ भृंग लकड़ी मे गोलाकार छेद काटकर बाहर निकलता है। बाहर निकलने के लिए यह वार्निश तथा पेन्ट मे भी छेद काट सकता है। अनुकूल परिस्थिति मे एक वर्ष मे इसकी तीन पीढ़ियाँ हो सकती हैं, परन्तु विपरीत परिस्थिति में एक पीढ़ी के ही पूरा होने मे आठ वर्ष लग सकते हैं।

डिनोडेरस—इसकी चार प्रमुख जातियाँ—डि. एसलेरिस (चित्र 44) (Dinoderus acellaris), डि. ब्रेविस (D. brevis), डि. माइनूटस (D. minutus) तथा डि. पिलिफ्रान्स (D. pilifrons) हैं।

सर्वाधिक क्षति डि. एसलेरिस से होती है। यह प्रायः कटे हुए बांस अथवा बांस के बने फर्नीचर व अन्य सामान में छेद करके क्षति पहुँचाता है। यह गोलाकार, कत्थई रंग का, 3–4 मि० मी० लम्बा होता है। इसका सिर पीछे की ओर मुड़ा
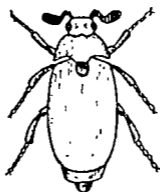
चित्र 44. फर्नीचर भृंग-
डिनोडेरेस ऐसलेरिस

हुआ धड़ के नीचे छिपा रहता है। पंख के ऊपर छोटे-छोटे बाल होते हैं। यह बाँस में उसी स्थान पर छेद करता है जहाँ से छाल हट जाती है।

जीवन-इतिहास—मादा बाँस पर विद्यमान गड्ढों अथवा छिद्रों में अण्डे देती है। अण्डों का ऊष्मायन काल 5-6 दिन होता है। नवजात डिम्भक लकड़ी के अन्दर छेद करके अन्दर प्रवेश कर जाता है। इसके द्वारा निकाला गया मल तथा लकड़ी का चूर्ण सुरंग के अन्दर ही एकत्रित होता रहता है। सुरंग के एक सिरे पर कोशित बनता है। नवजात अर्धविकसित भृंग बाहर निकलने के पहले अन्दर ही अन्दर लकड़ी को खाता है। इसके बाद भृंग कोशित कोशिका के ऊपर लकड़ी में छेद करके अथवा वापस चलकर असली प्रवेश छिद्र से बाहर निकलता है। इसकी एक वर्ष में 3–4 पीढ़ियाँ होती हैं।

नियंत्रण—1. यदि लकड़ी पहले से ग्रसित नहीं है तो अच्छी तरह से वार्निश अथवा पेन्ट किया हुआ फर्नीचर व अन्य सामान सुरक्षित रह सकता है।

2. ग्रसित लकड़ी का मेथाइल ब्रोमाइड से धूमन करना चाहिए अथवा उस पर डी. डी. टी. 5 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

3. यदि लकड़ी पर वार्निश अथवा पालिस नहीं की गई हो तो उस पर बेन्जीन अथवा कार्बन टेट्राक्लोराइड में नेफ्थलीन घोलकर रंग करना चाहिए।

(3) सिगरेट भृंग—लेसिओडर्मा सेरीकार्ने (Lasioderma serricorne) (चित्र 21)

कुल—एनोबाइडी (Anobiidae)

प्रौढ भृंग गोलाकार, लगभग 2.5 मि०मी० लम्बा तथा लाल मिश्रित कत्थई रंग का होता है। इसका सिर तथा धड़ का प्रथम खण्ड नीचे की ओर मुड़े हुए तथा पख कोमल होते है।

यह सिगार तथा सिगरेट फैक्ट्री में संचित तम्बाकू का सबसे प्रमुख शत्रु है। इसके अलावा यह इमली, लाल व काली-मिर्च तथा संरक्षित किए गए पौधो के नमूनो को भी क्षति पहुँचाता है। भृंग का आक्रमण तम्बाकू की पत्ती के कटने के तुरन्त बाद ही आरम्भ हो जाता है, यही से ग्रसन फैक्ट्री तक पहुँचता है, जहां पर भृंग व डिम्भक देखे जा सकते हैं। ये दोनों ही अवस्थाएँ क्षति पहुँचाती हैं।

जीवन-इतिहास—मादा तम्बाकू की पत्ती तथा अन्य पोषी पदार्थो पर अण्डे देती है। गर्मी मे 6-10 दिन मे अण्डे से डिम्भक निकलते हैं, जो टेढ़े, बालयुक्त पीलापन लिए सफेद रग के होते है। पूर्ण विकसित डिम्भक 4 मि.मी. लम्बा होता है तथा इसका विकासकाल 30–50 दिन होता है। डिम्भक द्वारा निर्मित कोश के अन्दर कोशित बनता है। कोशित काल लगभग 10 दिन होता है, एक वर्ष में इसकी आठ पीढ़ियाँ हो सकती हैं।

नियन्त्रण—1. संचयन के दौरान ग्रसित तम्बाकू का हाइड्रोजन सायनाइड द्वारा धूमन करना चाहिए अथवा डी.डी.टी. 5 प्रतिशत या पाइरेथ्रम एक प्रतिशत का गंधहीन मिट्टी के तेल मे छिड़काव करना चाहिए।

2. ग्रसित तम्बाकू को 135°F तक गर्म करने अथवा 25°F तक ठंड करने से भी यह कीट मर जाता है।

गण—डिप्टेरा (Diptera)

(1) घरेलू मक्खी—मस्का नेबुलो (Musca nebulo Wiedeman)

कुल—मस्सिडी (Muscidae)

यह मक्खी सम्पूर्ण विश्व में पाई जाती है, पर गर्म व नम प्रदेशों मे इसकी संख्या अधिक होती है। भारत मे इसकी तीन जातियाँ पाई जाती हैं—(i) मस्का नेबुलो, (ii) मस्का विसिना (M. vicina) तथा (iii) म. डोमेस्टिका (M. domestica) *(चित्र 45) जो हिमालय के ठंडे प्रदेशो मे पाई जाती है।*

घरों के आस-पास गंदगी होने पर इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। घरों मे कंटक होने के अलावा ये कई घातक बीमारियाँ जैसे पेचिस, हैजा, टाइफायड तथा आंत्र-शोथ आदि फैलाने में सहायक होती हैं। इसके अलावा मुर्गी, घोड़े, खच्चर तथा गधे मे बीमारी पैदा करने वाले जन्तुओं के लिए पोषी जन्तु का कार्य करती हैं।

प्रौढ मक्खी की लम्बाई 6–7 मि०मी० तथा पंखों के आर-पार चौड़ाई 13–15 मि०मी० होती है। इसका रंग गंदा, पंख पीलापन लिए हुए भूरे रंग का व मूल मे पीला होता है। ऊपरी वक्ष भूरे रंग का होता है, जिस पर चार चौडी धारियाँ होती हैं। एन्टिना पर प्लूमोस एरिस्टा होता है।

चित्र 45. घरेलू मक्खी- मस्का डोमेस्टिका

जीवन-इतिहास—कोशित से निर्गमन के 24 घण्टे बाद मादा सम्भोग करके खाद के ढेर, शौच अथवा अन्य गन्दी जगहों पर अण्डे देती है। एक मादा लगभग 500 अण्डे देती है। अण्डे 75 से 150 के झुंड में दिए जाते हैं। ऊष्मायन-काल 12 घण्टे से 20 दिन तक हो सकता है। अपादक (Maggot) पूर्ण विकसित होने पर किनारे की ओर आ जाते हैं और कत्थई रंग के नालनुमा, कोशितावरण में कोशित में परिवर्तित हो जाते हैं। कोशित काल 4–5 दिन होता है। प्रौढ़ मक्खी का जीवनकाल 20–30 दिन होता है। अनुकूल परिस्थिति व नम मौसम में अण्डे से प्रौढ़ मक्खी बनने में 12–14 दिन का समय लगता है। गर्मी के मौसम में इसकी 12 पीढ़ियां हो जाती हैं।

नियन्त्रण—1. घरेलू मक्खी से छुटकारा पाने का सबसे अच्छा उपाय घरों के आस-पास सफाई रखना है। वहाँ कूड़ा करकट, शौच, खाद, मरे जानवर आदि एकत्रित नहीं होने देना चाहिए।

2. घरों मे यथासम्भव जाली के दरवाजे, खिड़कियाँ होनी चाहिए।

3. डी.डी टी. 5 प्रतिशत, मैलाथिग्रान/डायजिनान 2 प्रतिशत, लिन्डेन/क्लोर्डेन एक प्रतिशत अथवा डाइक्लोरफान 0·5 प्रतिशत इसके नियन्त्रण के लिए उपयोगी पाए गए हैं। टयूगान विष चुग्गे से भी भारी मात्रा में मक्खियाँ मर जाती हैं।

(2) सिकता मक्खी—**फ्लैबोटोमस अर्जेन्टीपेस (Phlebotomus argentipes), फ्ले॰ पापाटासी (P. papatasi)** (चित्र 46) तथा **फ्ले॰ सर्जेन्टी (P. sergenti)**

कुल—साइकोडिडी (Psychodidae)

सिकता मक्खी आकार मे बहुत छोटी, लगभग 2 मि.मी., पतंगे जैसी, गंदे पीले रंग की होती है, इनके पंख छोटे व चौड़े होते हैं तथा विश्राम की अवस्था में शरीर पर

चित्र 46 सिकता मक्खी- फ्लैबोटोमस पापाटासी

V के आकार में फैले रहते हैं। इसके पैर, शरीर तथा पंख लम्बे बालों से ढके रहते हैं। पंख में अनुप्रस्थ शिराएँ नहीं होती हैं। मादा के मुखांग वेधन व चूषक प्रकार के होते हैं। काला अजार, सिकता मक्खी ज्वर, ट्रापिकल अलसर आदि बीमारियाँ इससे

फैलती हैं। यह मक्खी रात्रि में सक्रिय रहती है, दिन में चुपचाप छिपी पड़ी रहती है। इसके काटने के समय बहुत कष्ट होता है तथा काटने के स्थान पर बहुत तेज खुजली चलती है तथा वह स्थान सूज जाता है। यह प्रायः पैर के ऊपरी भाग, टखना, घुटना, कलाई तथा कुहनी के पास से रक्त चूसती है।

जीवन-इतिहास—मादा मक्खी अधेरे, नम ऐसे स्थानों पर अण्डे देती है, जिनमें कार्बनिक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। अण्डों से लगभग एक सप्ताह में डिम्भक/अपादक निकलते हैं। ये क्षयमान नत्रजनीय पदार्थों को खाते हैं। डिम्भक आकार में लेपिडोप्टेरा गण के डिम्भकों से मिलते-जुलते होते हैं, डिम्भक लगभग एक माह में चार निर्मोचरूप/इंस्टार के बाद कोशित में परिवर्तित हो जाता है। कोशित काल लगभग 10 दिन होता है तथा प्रौढ़ मक्खी का जीवन-काल 8–10 दिन होता है। पूरा जीवन-चक्र लगभग 2 माह में पूरा हो जाता है। यह मक्खी वर्ष भर सक्रिय रहती है तथा एक वर्ष में इसकी कई पीढ़ियाँ होती हैं।

नियन्त्रण—(1) इनके प्रजनन को रोकने के लिए घर के आस-पास सफाई रखनी चाहिए ताकि उन्हें अण्डे देने के लिए समुचित स्थान नहीं मिल सके।

(2) आवास के अन्दर तथा आस-पास डी.डी.टी. अथवा बी.एच.सी. 0·5 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। मच्छर के नियन्त्रण के लिए उपयोग किए गए कीटनाशियों से इनका भी नियन्त्रण हो जाता है।

चित्र 47. सार्कोफैगा

(3) मायसिस उत्पन्न करने वाली मक्खी—सार्कोफैगा (Sarcophaga Sp.) (चित्र 47)

कुल—कैलिफोरिडी (Calliphoridae)

साधारणत. यह मक्खी घर के अन्दर नही पाई जाती है। मादा मक्खी गिरे हुए रक्त तथा रोगग्रस्त ऊतको के स्राव की ओर आकर्षित होती है। यह घाव के पास ही अण्डे देती है। अण्डों से निकलकर डिम्भक घाव के अन्दर प्रवेश कर मांस पेशियो में घाव पैदा करते हैं। यह बीमारी त्वचा, नाक, कान, मुँह, आँख, योनि आदि पर हो सकती है। डिम्भक स्वस्थ त्वचा तथा ऊतकों में प्रवेश नहीं कर सकते।

(4) चक्षु मक्खी—साइफनकुलिना फुनिकोला (Siphunculina funicola) (चित्र 48)

कुल—क्लोरोपिडी (Chloropidae)

यह अत्यन्त छोटी लगभग 2 मि.मी. लम्बी, चमकीले काले रंग की मक्खी होती है। इसके पैर पीले रंग के होते हैं। यह आँखों के सामने भनभनाहट की आवाज करती हुई मँडराती रहती है और मौका मिलने पर आँखों के कोने में एकत्रित स्राव को खाती है। खुले हुए घाव, फोड़े, फुन्सी आदि पर बहुत आकर्षित होती है। यह पूर्वी तथा दक्षिणी भारत में बहुत पायी जाती है।

इसका प्रजनन शौचालयों तथा गन्दी नालियों के पास विघटनशील कार्बनिक पदार्थों से युक्त मिट्टी में होता है।
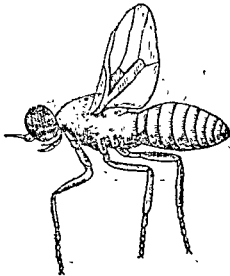
चित्र 48 चक्षु मक्खी - साइफनकुलिना फुनीकोला

नियन्त्रण—इनसे छुटकारा पाने का सबसे अच्छा उपाय घरों के आस-पास सफाई रखना है। आवश्यकता होने पर मच्छर-मक्खी के लिए उपयुक्त रसायन इसके नियन्त्रण के भी काम में लिए जा सकते हैं।
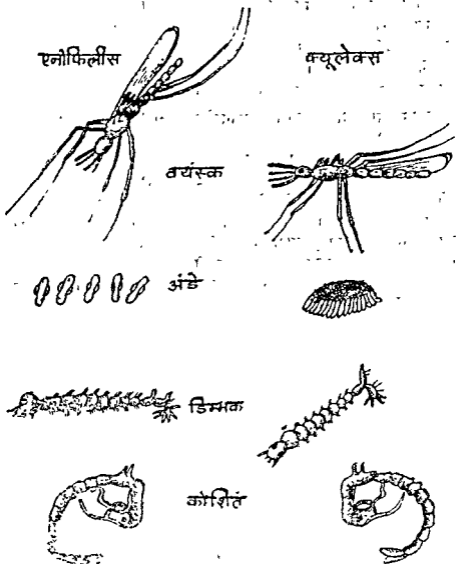
चित्र 49. ऐनोफिलीस तथा क्यूलेक्स मच्छर

(5) मच्छर (Mosquitoes) (चित्र 49)

कुल—कुलिसिडी (Culicidae)

मनुष्य में बीमारी फैलाने वाले कीटों में मच्छर सबसे महत्वपूर्ण है। इसकी

अनेक जातियाँ हैं, जिनमें मलेरिया फैलाने वाला एनोफिलीस (Anopheles) प्रमुख है। क्यूलेक्स फैटिगेन्स (Culex fatigans), मैन्सोनिया एन्यूलीफेरा (Mansonia (Mansonioides) annulifera) तथा कई अन्य जातियाँ फाइलेरिया फैलाने में सहायक होती हैं। एडीस जाति के मच्छर डेंगू तथा कुछ अन्य विषाणुजनित रोग फैलाते हैं। ऐनोफिलीस की 45 प्रजातियाँ भारतवर्ष में पाई जाती हैं, जिसमें से 9 मलेरिया के रोग वाहक हैं, इनमें भी ऐनोफिलीस क्यूलिसीफेसीस (A. culicifacis); ऐ० फ्लविएटिलिस (A fluviatilis); ऐ० स्टेफेन्जाई (A. stephensi); ऐ० मिनिमस (A minimus); ऐ० फिलिप्पाइनेन्सिस (A. philippinensis) तथा ऐ० सुनडाइकस (A. sundaicus) सर्वाधिक महत्वपूर्ण रोग-वाहक हैं।

बीमारी मादा मच्छर द्वारा ही फैलाई जाती है। इसके मुखांग वेधन व चूसक प्रकार के होते हैं, तथा यह मनुष्य का रक्त चूसती है। बीमार व्यक्ति का रस चूसकर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटने पर बीमारी के कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में पहुँच जाते हैं। नर मच्छर के मुखांग रक्त चूसने के उपयुक्त नहीं होते।

जीवन-इतिहास—मच्छर का प्रजनन पानी में होता है, मादा मच्छर पानी की सतह पर अण्डे देती है। अण्डों का ऊष्मायन काल 2–3 दिन होता है, डिम्भक पानी में रहते हैं तथा पानी में पाए जाने वाले छोटे-छोटे जन्तुओं को खाते हैं। इनके श्वसन के लिए ऐनोफिलीस जाति में पेट के अन्तिम सिरे पर स्थित एक जोड़ी श्वास रंध्र होते हैं। क्यूलेक्स में श्वासरंध्र एक लम्बे साइफन, विनाल पर स्थित होते हैं। विनाल का सम्बन्ध वाह्य वातावरण से होता है। डिम्भक लगभग 5 दिन में 4 निर्मोक रूप के बाद (,) कॉमा के आकार का कोशित बन जाता है, यह पानी में ही रहता है तथा कुछ खाता-पीता नहीं है। श्वसन के लिए इसके सिर पर दो तूर्य जैसी रचनाएँ होती हैं। जिनके ऊपर एक जोड़ी श्वास रंध्र स्थित होते हैं। दो-तीन दिन में कोशित से प्रौढ़ मच्छर निकल आता है।

मच्छर मनुष्य के आवास के आस-पास ही रहता है, एक वर्ष में इसकी अनेक पीढ़ियाँ पूरी हो जाती हैं, गर्म व नम परिस्थितियों में प्रजनन वर्ष भर चलता रहता है। कुछ जातियाँ अण्डा, डिम्भक अथवा प्रौढ़ के रूप में निष्क्रिय रहकर अपना शीत काल व्यतीत करती हैं।

नियन्त्रण—1. मच्छरों से छुटकारा पाने के लिए पानी के निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि मानवीय आवास के आस-पास मच्छरों के प्रजनन के लिए गंदा पानी एकत्रित नहीं हो सके।

2. प्रजनन के लिए एकत्रित पानी पर कच्चा/अपरिष्कृत तेल का छिड़काव करना चाहिये। इससे पानी के ऊपर एक पतली पर्त जम जाती है तथा श्वसन के अभाव में डिम्भक मर जाते हैं। इस पर मादा अण्डे भी नहीं देती है।

3. घरों में तथा आस-पास मैलाथियान 2 प्रतिशत/बी० एच० सी० 5 प्रतिशत अथवा डाइएल्ड्रिन 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करने से भी मच्छर नष्ट हो जाते हैं।

4. निम्नांकित रसायनों से बने हुए मिश्रण को शरीर के खुले हुए भागों पर लगाने से मच्छर प्रतिकर्षित होते हैं—

(अ)	डाइमेथाइल थैलेट	3 भाग
	इन्डालोन	1 भाग
	2, एथाइल–1,3, हेक्सानेडिओल	1 भाग
(ब)	डाइमेथाइल थैलेट	4 भाग
	2, एथाइल–1, 3–हेक्सानेडिओल	3 भाग
	डाइमेथाइल कार्बेट	3 भाग

5. घरों में जाली के दरवाजे व खिड़कियां लगाकर तथा सोते समय मच्छरदानी के उपयोग से भी मच्छरों से बचा जा सकता है।

वर्ग—काइलोपोडा (Chilopoda)

कनखजूरा—स्कूटीजेरा क्लीओप्ट्रेटा (Scutigera cleoptrata) स्कोलोपेन्ड्रा मार्सिटेन्स (Scolopendra marsitans Linn.)—चित्र 50)

कुल—स्कूटीजेरिडी (Scutigeridae)
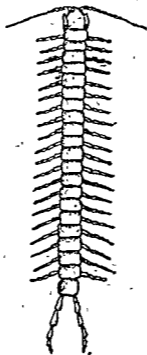
चित्र 50. शतपदी - स्कोलोपेन्ड्रा मार्सिटेन्स.

ये जन्तु चमकीले, लाल मिश्रित कत्थई रंग के, 5–7 से. मी. लम्बे होते है। इनके सिर पर लम्बे एन्टीना होते हैं। शरीर खण्डों मे विभाजित होता है तथा शरीर के प्रत्येक खण्ड मे एक जोड़ी लम्बे पैर होते हैं।

गर्म, नम व गन्दे स्थानो पर ये प्रायः पाये जाते हैं। वैसे तो घर मे ये किसी पदार्थ को खाकर कोई क्षति नही पहुँचाते हैं, लेकिन इनके डरावने आकार के कारण इनकी उपस्थिति स्वयं एक कण्टक है। कभी-कभी इनके काटने, शरीर पर चिपक जाने अथवा कान में घुस जाने के उदाहरण भी सामने आये है।

नियन्त्रण—1. तिलचटा अथवा झींगर के विनाश के लिए उपयोग किये गये कीटनाशी अथवा धूमक से भी ये नष्ट हो जाते हैं।

2. कमरों को साफ-सुथरा, खुला तथा हवादार रखने पर भी इनका आगमन नही होता है।

गण—डिक्टियोप्टेरा

तिलचटा—पेरीप्लैनेटा अमेरिकाना (Periplaneta americana)—(चित्र 51) पे० आस्ट्रेलिएन्स (P. australianse) ब्लाटा आरिएन्टॅलिस (Blatta orientalis); ब्लाटा जर्मेनिका (B. germanica); स्टाइलोपाइगा रोम्बीफोलिया (Stylopyga rhombifolia) तथा शेल्फोर्डेला टार्टरा (Shelfordella tartara)

कुल—ब्लैटिडी (Blathidae)

गृहवासी नाशक जन्तुओं में तिलचटा सबसे अधिक पाया जाता है। इसका शरीर दबा हुआ, चपटा, चमकीले गहरे कत्थई रंग का होता है। अंधेरे, गर्म व नम स्थानों जैसे—घर, रेस्तरां, होस्टल, बेकरी, खाद्यान्न भण्डार, रेल के डिब्बे, पानी के जहाज आदि में यह प्रायः पाया जाता है।

ये कीट रात्रि में सक्रिय रहते हैं तथा दिन में अंधेरे स्थानों जैसे—दीवार के छिद्र, दरार, सन्दूक के नीचे, सूखी नाली आदि मे छिपे रहते हैं। ये सर्वाहारी होते है तथा जन्तु एवं वनस्पतिजन्य सभी पदार्थों को समान रूप से पसन्द करते हैं। रात्रि को निकलकर खुले हुए खाद्य-पदार्थों को खाकर, उन पर चलकर अपने शरीर की दुर्गंध मिलाकर उन्हें नष्ट करते हैं। इनकी दुर्गन्ध इतनी तेज होती है कि पकाने के बाद भी नष्ट नही होती है।

पेरीप्लैनेटा अमेरिकाना भारत मे सर्वाधिक पाया जाता है। इसके अलावा ऊपर लिखी अन्य जातियां भी देश के विभिन्न भागों में पायी जाती हैं।

जीवन-इतिहास—गर्म तथा नम मौसम मे ये बहुत सक्रिय रहते हैं। पे. अमेरिकाना की मादा सेम के बीज के आकार के गहरे कत्थई रंग के सम्पुट/अंडसमूह के अन्दर दो लम्बी कतारों में ऊर्ध्वस्थित अण्डे देती है। एक सम्पुट में 25–30 अण्डे होते हैं तथा एक मादा ऐसे 100 सम्पुट दे सकती है। इनका उष्मायन-काल गर्मी
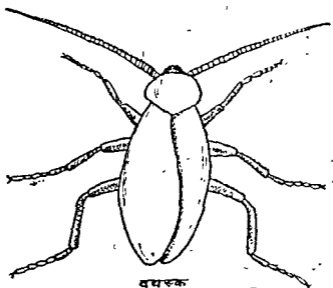
चित्र 51 तिलचट्टा पेरीप्लेनेटा अमेरिकाना

मे तीन सप्ताह तथा जाड़े मे तीन माह होता है। अण्डे से निकलने पर शिशु कई बार निर्मोक बदल कर परिस्थिति के अनुसार 3 से 10 माह में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं। प्राय: एक वर्ष में एक ही पीढ़ी होती है, लेकिन 2–3 पीढ़िया भी हो सकती हैं। इसीलिए इनके शिशु तथा प्रौढ वर्ष भर देखे जा सकते हैं।

नियन्त्रण—1. इनको घर मे आने से रोकने के लिए घर को स्वच्छ रखना चाहिये तथा तहखानों तथा पानी की नालियों से सम्बन्धित सभी पाइप लाइनों को लोहे की बारीक जाली से अच्छी तरह बन्द रखना चाहिये।

2. बी. एच. सी./डी. डी. टी. मैलाथियान 0.2 प्रतिशत के छिड़काव अथवा बी. एच. सी. 10 प्रतिशत, मैलाथियान/कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण के बुरकाव से भी

ये नष्ट किये जा सकते हैं। कीटनाशी का छिड़काव अथवा बुरकाव विशेषकर दीवार के सहारे अथवा कोनों में करना चाहिये। ऐसा करते समय कीटनाशियों के उपयोग के सम्बन्ध में बतायी गयी सभी सावधानियों का ध्यान रखना चाहिये।

गण—हेमीप्टेरा (Hemiptera)

खटमल—साइमैक्स लेक्टुलेरियस (Cimex lectularius) Linn. (चित्र 52) तथा साइमैक्स हेमीप्टेरस (Cimex hemipterus Fabr.)
कुल—सिमिसिडी (Cimicidae)

चित्र 52. खटमल साईमैक्स लेक्टुलेरियस

यह आकार में छोटा लगभग 6 मि० मी० लम्बा, 3–4 मि० मी० चौड़ा, चपटा, पंखहीन, लाल मिश्रित कत्थई रंग का कीट होता है। इसके अन्दर दुर्गन्ध ग्रन्थि (Stink gland) होती है जिससे एक अजीब तरह की गन्ध निकलती है।

ये नम व गन्दे स्थानों में अधिक पाये जाते हैं। रात्रि को सक्रिय रहने वाले ये कीट दिन में मकान की दरारों, दरवाजे, खिड़कियों, फर्नीचर, बिस्तर आदि मे छिपे रहते हैं। ये प्राय: रेल यात्रा, अस्पताल, धर्मशाला आदि से बिस्तर के साथ आ जाते हैं। एक बार प्रवेश होने के बाद इनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है।

ये मनुष्य तथा मुर्गियों पर परजीवी हैं। पोषी के शरीर से रक्त चूसकर कमजोर बना देते हैं पर कोई बीमारी नही फैलाते हैं। रात्रि में नींद भी खराब कर देते हैं। कुछ लोगो को खटमल से एलर्जी होती है और इनके काटने से शरीर पर लाल चकत्ते पड़ जाते हैं।

जीवन-इतिहास—ये प्राय: वर्ष भर सक्रिय रहते हैं पर प्रजनन जाड़े में नही होता है। मादा खटमल लम्बे, चमकीले सफेद रंग के अण्डे देती है। ये अण्डे बिस्तर, फर्नीचर, दरवाजे, खिड़कियो आदि छिपने के स्थानो पर चिपके हुए देखे जा सकते हैं। एक मादा अपने जीवन-काल में 75 से 500 तक अण्डे दे सकती है। अण्डो का ऊष्मायन-काल 6–17 दिन होता है। उसके बाद शिशु निकलता है जो पाँच बार निर्मोक परिवर्तन के बाद लगभग 6-8 सप्ताह में प्रौढ़ बन जाता है। पूरा जीवन-चक्र 15–50 सप्ताह में पूरा हो जाता है। इनमें अत्यन्त कठिन परिस्थितियो को सहने की क्षमता होती है। बिना भोजन के ये लगभग एक वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। वर्ष में इनकी चार पीढ़ियाँ होती हैं।

नियन्त्रण—1. यात्रा से आने के बाद बिस्तर व अन्य कपड़ो को कड़ी धूप में सुखाना चाहिये।

2. खाट की रस्सी, निवाड़ आदि को गर्म पानी मे उबालकर धूप में सुखाना चाहिये। छिपने के स्थान पर भी उबलता हुआ पानी डालने से अण्डे, शिशु, प्रौढ़ आदि सब मर जाते हैं।

3. ग्रसित सामान व स्थान पर बी एच. सी./डायजिनान 5 प्रतिशत, मैलाथियान 1 प्रतिशत अथवा लिन्डेन 0.1 प्रतिशत का छिड़काव लगभग 15 दिन के अन्तराल से कई बार करने पर इनका नियन्त्रण हो सकता है।

गण—हायमेनोप्टेरा (Hymenoptera)

चींटी (Ants)

लाल चींटी—**डोरीलस लेबिएटस** (Dorylus labiatus shukard); **मोनोमोरियम इण्डिकम** (Monomorium Indicum F.) (चित्र 53); **मो० ग्रैसिलिनम** (M. gracillinum);

वड़ी काली चींटी/खाती चींटी (Carpentar' ant)—**कैम्पोनोटस काम्प्रेसस** (Camponotus compressus Fabr.) (चित्र 54)

कुल—फार्मिसिडी (Formicidae)
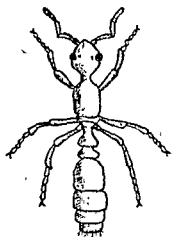
चित्र 53. काली चींटी - मोनोमोरियम इंडिकम

चित्र 54. खाती चींटी - कैम्पोनोटस

चींटी गर्म तथा नम जलवायु में अधिक पायी जाती है। भारत की प्रत्येक गृहिणी इससे परिचित होगी। यह सभी प्रकार की खाद्य-सामग्री जैसे—अनाज, सब्जी, वसा, मिठाई, मांस, जीवित तथा मृत जन्तु आदि को खाती है।

यह दीमक की भाँति ही सामाजिक कीट है। कॉलोनी/निवह का कार्य करने के लिए इसकी विभिन्न जातियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए—1. श्रमिक (मादा का रूपान्तरण), 2 नर तथा 3. रानी। दीमक के प्रतिकूल चींटी सूर्य की रोशनी से दूर नहीं भागती तथा दिन में सक्रिय रहती है। एक निवह में एक अथवा एक से अधिक रानी, प्रजननशील मादा, दो या तीन प्रकार की बंध्या मादा तथा श्रमिक होते हैं। कुछ श्रमिक आकार में बड़े तथा कुछ छोटे होते हैं। कुछ के पास निवह की सुरक्षा के लिए लम्बे सिर पर लम्बे तथा मजबूत जबड़े होते हैं।

जीवन-इतिहास—प्राय: बरसात के मौसम में पंखयुक्त नर तथा मादा बाहर निकलते हैं। ये हवा में ही सम्भोग करते हैं तथा सम्भोग के बाद कभी-कभी नर मर जाते हैं। मादा के पंख टूट जाते हैं तथा वह जमीन में जाकर अपने रहने के लिए

स्थान बनाती है, जिसे चारों ओर से बन्द कर लेती है। लगभग एक माह बाद मादा अण्डे देना आरम्भ करती है। अण्डों से निकलने पर डिम्भक मादा की लार-ग्रन्थि से निकले स्राव को ही खाते है। पूर्ण विकसित डिम्भक कोशितो में परिवर्तित हो जाते है। इन कोशितो से श्रमिकों का पहला बैच निकलता है जो बन्द निवह की दीवार को तोड़कर बाहर निकलते हैं तथा निवह के अन्य सदस्यों के लिए भोजन एकत्रित करने का कार्य करते हैं। प्रायः वर्ष में इनकी दो या तीन पीढ़ियाँ होती हैं। जैसे-जैसे निवह का आकार बढ़ने लगता है पुराने कक्ष में नये-नये कक्ष जुड़ते चले जाते है। एक निवह के स्थापित होने मे कई वर्ष लग जाते हैं। एक बार स्थापित होने पर कई वर्ष तक यह चलती रहती है। एक बार सम्भोग करके ही रानी चींटी कई वर्ष तक अण्डे देती रहती है। मादा का जीवन-काल बहुत लम्बा होता है। कहीं-कहीं मादा 15 वर्ष तक भी जीवित पायी गयी है।

मोनोमोरियम इण्डिकम् के श्रमिक छोटे आकार तथा लाल रंग के होते है। इनके बिल प्रायः घर के बाहर दीवार के पास होते हैं, यहीं से चींटियाँ घर के अंदर प्रवेश करके बाधा उत्पन्न करती हैं। खाद्य सामग्री के अलावा इनका आक्रमण लकड़ी की चीजों पर भी होता है।

मोनोमोरियम ग्रैसिलिनम—प्रायः घास फूस के झोपड़ों तथा पेड़ पर पाई जाती है, घर मे यह आटा तथा चिकनाई खाती है तथा पेड़ पर मीली बग (mealy bugs) के साथ रहती तथा भोजन के लिए उनके स्राव का उपयोग करती है।

डोरिलस लेबिएटस—चमकीले गहरे लाल अथवा कत्थई रंग की होती है। इसका बिल घर से बाहर होता है। यह बहुत दूर तक यात्रा कर घर में पहुँचती है तथा वहीं वस्तुओं को क्षति पहुँचाती एवं बाधा उपस्थित करती है।

कैम्पोनोटस काम्प्रेसस—को खाती चींटी भी कहते हैं। इसका रंग काला, पेट का भाग अधिक चमकीला तथा शरीर अपेक्षाकृत कोमल होता है। यह संचित अनाज तथा लकड़ी को क्षति पहुँचाती है। अपनी संख्या बाहुल्य के कारण थोड़े ही समय मे ये 40 कि० ग्राम तक अनाज एकत्रित करती हुई पायी गयी है।

नियन्त्रण—1. घर के बाहर स्थित इनके बिलों को खोजकर उनमे मिट्टी का तेल अथवा बी. एच. सी. ई. सी. डालकर नष्ट किया जा सकता है।

2. बिल के अन्दर बी० एच० सी० 10 प्रतिशत, क्लोर्डेन 5 प्रतिशत चूर्ण डालने अथवा इसके आस-पास लिन्डेन 2 प्रतिशत का छिड़काव करने से भी इसे नष्ट किया जा सकता है।

3. अनाज के ढेर अथवा तुरन्त बुवाई किए गए खेतो के चारो ओर बी. एच. सी. 10 प्रतिशत चूर्ण का बुरकाव करके भी इनसे सुरक्षा की जा सकती है।

(2) ततैया/टाट्या (Wasps)—**पोलिस्टेस हेब्रोयस (Polistes hebraeus Fabr)**, तथा **वेस्पा ओरिएन्टैलिस (Vespa orientalis Linn.)** (चित्र 55)

कुल—वेस्पिडी (Vespidae)
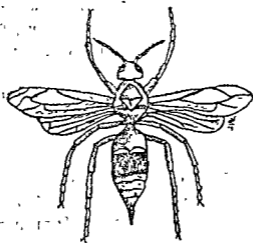
चित्र 55. ततैया वेस्पा ओरिएन्टैलिस

ततैया की ऊपर लिखी दोनों जातियाँ भारत के मैदानी भागों में पायी जाती हैं। ये लोगों को डंक मार कर परेशान करती हैं तथा घरों में भी कटक उत्पन्न करती हैं।

पोलिस्टेस हेब्रीयस पूर्णतया पीले रंग की तथा वेस्पा ओरिएन्टैलिस गहरे कत्थई रंग की होती है, जिसके उदर पर पीले रंग की अनुप्रस्थ धारियाँ होती हैं। दोनों ही जातियाँ घर की छत, दीवार के अन्दर अथवा पेड़ पर सुरक्षित स्थानों पर अपने छत्ते बनाती हैं। उत्तरी भारत में पायी जाने वाली आकार में सबसे बड़ी जाति वेस्पा मैग्नीफिका (Vespa magnifica Smith) होती है। यह अपना घर पृथ्वी के अन्दर बनाती है। यह मधुमक्खी की सबसे प्रमुख परभक्षी है। इसे मधुमक्खी के छत्तों पर मँडराते हुए देखा जा सकता है।

जीवन इतिहास—ये गर्मी के महीनों में सक्रिय रहती हैं। जाड़े के दिनों में गर्भवती, निसेचित मादा के रूप में घर की दीवार, पेड़ों के छेद व दरार अथवा अन्य सुरक्षित स्थानों पर सुसुप्तावस्था में पड़ी रहती है। ये जाड़े में प्रायः अपने छत्ते छोड़ देती हैं तथा पुनः नए छत्ते बनाती हैं। पोलिस्टेस हेब्रीयस के छत्ते साधारण व गोल होते हैं तथा मकान के बरामदों की छत से लटकते हुए देखे जा सकते हैं। वेस्पा ओरिएन्टैलिस के छत्ते साधारण तथा बिना किसी निश्चित आकार के होते हैं। ये छत्ते घर की दीवार अथवा पेड़ पर छिपे हुए स्थान में बनाए जाते हैं। नर तथा मादा के सम्भोग के पश्चात जाड़े में प्राय. नर तथा श्रमिक मर जाते हैं तथा गर्भवती मादा जाड़े भर अक्रियाशील अवस्था में पड़ी रहती है। अनुकूल परिस्थिति आने पर रानी स्वयं छत्ता बनाती है तथा उसके अन्दर प्रत्येक कोष्ठ में एक एक

अण्डा देती है। इन अण्डों से निकलकर डिम्भक कोष्ठिका के अन्दर ही रहते हैं। ये कीटों के पर भक्षण तथा अन्य जन्तुओं के शरीर से काटे गए मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों को मसलकर तैयार किया गया भोजन करते हैं। पूर्ण विकसित डिम्भक कोष्ठिका के अन्दर ही कोशित में बदल जाता है। श्रमिक इस को ष्टिकाको ऊपर से बन्द कर देते हैं। इनमें छेद काटकर प्रौढ़ बाहर निकलते है।

नियन्त्रण—1. घरों के आस-पास लगे छत्तों को रात्रि में जलाकर नष्ट किया जा सकता है।

2 घर तथा बगीचों मे ट्राइक्लोरफान युक्त चीनी का विष-चुग्गा लटका कर भी इन्हें नष्ट किया जा सकता है।

गण—आइसोप्टेरा (Isoptera)

दीमक—कोमल शरीर वाले गंदे सफेद रंग के चीटी जैसे ये कीट घरों में लगी सूखी अथवा नम लकड़ी, लकड़ी के सामान, कागज इत्यादि को खाकर क्षति पहुंचाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—

(I) जो सीधे लकड़ी पर आक्रमण करके क्षति पहुंचाते हैं तथा

(II) भूमिगत रहकर लकड़ी पर आक्रमण करके क्षति पहुँचाते हैं।

(क) कुल—कैलोटर्मिटिडी (Kalotermitidae)—ये लकड़ी में पायी जाती हैं तथा इनमे श्रमिक जाति नही पाई जाती है। उदाहरण के लिए—कैलोटर्मस इंडिकस (Kalotermes indicus Holmgren) तथा क्रिप्टोटर्मस डोमेस्टिकस (Cryptotermes domesticus Haviland)।

(ख) कुल—राइनोटर्मिटिडी (Rhinotermitidae)—इस कुल के दीमक पृथ्वी के अन्दर रहती हैं तथा वहीं से लकडी पर आक्रमण करते हैं। इसमे श्रमिक पाये जाते हैं। भारत में पायी जाने वाली इस कुल की प्रमुख जातियाँ कोप्टोटर्मस सीलोनिकस (Coptotermes ceylonicus Holmgren) (चित्र 56), को. परवुलस (C. parvulus Holmgren) तथा स्टाइलोटर्मस फ्लेचराई (Stylotermes fletcheri Holmgren) हैं।

(ग) कुल—होडोटर्मिटिडी (Hodotermitidae)—इस कुल के सदस्य प्राय: जमीन के नीचे तथा लकड़ी मे पाए जाते हैं। उदाहरण—होडोटर्मस मैक्रोसेफैलस (Hodotermes macrocephalus Desnaux) तथा हो. कोनिजाई (H. Koenigi Holmgren)।

दीमक एक सामाजिक कीट है तथा इसके निवह/कॉलोनी की रचना जातीय तंत्र पर आधारित होती है—निवह में पाए जाने वाले सदस्यों को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(अ) जननीय जाति—इसमे निवह बनाने वाले सदस्य, रानी, राजा तथा पूरक जातियाँ होती हैं।
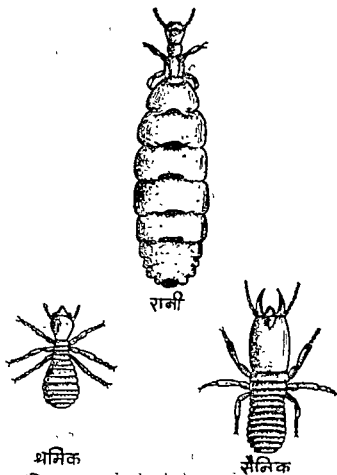
चित्र 56. दीमक कोप्टोटर्मेस

(ब) बंध्या जाति—इसमें श्रमिक तथा सिपाही आते हैं।

(अ) जननीय जाति

(i) निवह बनाने वाले सदस्य—ये नर तथा मादा दोनों प्रकार के कीट होते हैं जो प्रायः बरसात के दिनो में अनुकूलतम परिस्थितियों मे निकलते हैं। इन्हें प्रथम बरसात के बाद सड़क पर लगी रोशनी पर देखा जा सकता है। इनके पंख केवल मैथुनी उड़ान (Nuptial flight) के लिए ही होते हैं। सम्भोग के बाद पंख गिर जाते हैं। इस उड़ान के दौरान अनेक परभक्षी जन्तु इन्हें खा जाते हैं। बचे हुए युग्म पृथ्वी के अन्दर जाकर एक नए निवह का निर्माण प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भ में परिवार की रक्षा तथा भोजन एकत्रित करने का कार्य ये युग्म ही करते हैं।

(ii) रानी—सम्पूर्ण निवह में यह अकेली ही पूर्ण विकसित मादा होती है। इसका विकास निवह निर्माण करने वाले अथवा पूरक सदस्यों द्वारा होता है। यह आकार में सबसे बड़ी होती है। इसका उदर कुछ पीलापन लिए सफेद रंग का होता है जिसपे आर-पार हल्के कत्थई रंग की अनुप्रस्थ धारियाँ होती हैं।

रानी को श्रमिकों द्वारा उसकी पसन्द का सबसे अच्छा भोजन दिया जाता है तथा यह घर के विशेष भाग मे रहती है। इसे शाही कक्ष कहते हैं। रानी का कार्य केवल अण्डे देना होता है। यह चौबीस घण्टे में 70,000 से 80,000 अण्डे देती है। इसीलिए इसे अण्डा देने की मशीन भी कहते हैं। रानी का जीवन-काल 5–10 वर्ष होता है लेकिन यह बीस वर्ष तक भी जीवित पायी गयी है। यह जमीन के अन्दर लगभग 0·5 मीटर नीचे रहती है।

(iii) राजा—राजा का विकास अनिषेचित अण्डे से होता है। इसका पूर्ण विकास विशिष्ट प्रकार का भोजन करने के कारण होता है। इसे निवह का पिता कहते हैं। यह निवह निर्माण करने वाले सदस्यों से बड़ा होता है। राजा समय-समय पर रानी से सम्भोग करके निषेचित अण्डे देने में उसकी मदद करता है। इसका जीवन-काल रानी से बहुत छोटा होता है। इसके मरने के बाद पूरक सदस्यों से नए राजा का विकास होता है।

(iv) पूरक जातियाँ—ये पक्षहीन अथवा छोटे पक्षयुक्त नर तथा मादा होते हैं जो पृथ्वी के अन्दर ही रहते हैं। रानी या राजा की अकस्मात मृत्यु के समय श्रमिकों की प्रेरणा से इनके अन्दर लैंगिक विकास होता है और ये आवश्यकतानुसार राजा रानी बन जाते हैं।

(ब) वंध्या जातियाँ

(v) श्रमिक—ये निषेचित अण्डों से उत्पन्न होते हैं परन्तु साधारण भोजन खाने के कारण ये पूर्ण विकसित नहीं हो पाते तथा आकार में भी छोटे रह जाते हैं। इनकी संख्या निवह में सर्वाधिक होती है। ये सूर्य के प्रकाश से दूर रहते हैं तथा स्वयं-निर्मित मिट्टी के रास्तों द्वारा पृथ्वी से ऊपर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते है। प्रजनन तथा सुरक्षा के अलावा निवह का समस्त कार्य श्रमिक ही करते हैं। अण्डे तथा अवयस्कों की देखभाल, भोजन एकत्रित करना इनका प्रमुख कार्य है। इनके जबड़े बहुत शक्तिशाली तथा काटने के लिए विकसित होते हैं। सबसे अधिक क्षति इन्हीं के द्वारा होती है।

(vi) सिपाही—इनका विकास अनिषेचित अण्डों से होता है तथा ये अपेक्षाकृत अविकसित ही रहते हैं। इनका सिर बड़ा तथा जबड़े लम्बे व मजबूत हँसिया जैसे होते हैं। अपने विशिष्ट आकार के कारण ये आसानी से पहचाने जा सकते हैं।

एक निवह में दो प्रकार के सिपाही पाए जा सकते हैं।

(i) मैन्डिबुलेट—इनके जबड़े मजबूत, हँसिया जैसे व लम्बे होते हैं। ये आक्रामकों से लड़कर निवह की रक्षा करते हैं।

(ii) नैसूट (Nasute)—इनके जबड़े बहुत छोटे अथवा बेकार होते हैं, ये रोस्ट्रम (rostrum) से दुर्गंधयुक्त द्रव निकालते हैं जिससे आक्रामक दूर भाग जाते हैं।

जीवन-इतिहास—बरसात के दिनों मे पंखयुक्त नर-मादा भारी संख्या में झुंड में निकलते हैं। इनके पंख कमजोर होते हैं तथा इनसे दूर तक नही उड़ा जा सकता। प्राय: एक जाति के दीमक के झुंड एक साथ ही निकलते हैं। ये आस-पास के प्रकाश के खम्भों व अन्य साधनो पर आकर्षित होते हैं। इस समय अधिकांश सदस्य परभक्षियों द्वारा नष्ट कर दिये जाते है। जो नर-मादा बच जाते हैं वे जमीन पर गिरकर पंख टूटने से पहले अथवा बाद मे सम्भोग करते हैं। इसके बाद पृथ्वी के अन्दर जाकर अपने रहने के लिए स्थान बनाते हैं। प्रारम्भ मे निवह का सम्पूर्ण कार्य ये माता-पिता ही करते हैं। प्रथम मौसम में जननीय जाति का विकास नहीं होता है। धीरे-धीरे रानी दीमक आकार मे बढ़ती है तथा इसके द्वारा दिए गए अण्डों की संख्या भी बढ़ने लगती है। लगभग एक सप्ताह में अण्डो से फूटकर डिम्भक निकलते हैं तथा लगभग छ: माह में उनसे श्रमिक/सिपाही विकसित होते हैं। मादा का जीवनकाल 5–10 वर्ष होता है तथा अपने जीवन-काल में यह कई लाख अण्डे देती है। दीमक के घर में अन्य जन्तु जैसे भृंग, मक्खी, पर्णकीट, मकडी, कोलेम्बोला (Collembola), काइलोपोडा (Chilopoda), डिप्लोपोडा (Diplopoda), साँप, छिपकली आदि भी पाये जा सकते हैं।

नियन्त्रण—एक बार दीमक के निवह का विकास हो जाने के बाद इनका नियन्त्रण कठिन हो जाता है, लेकिन फिर भी घरों में इनके नियन्त्रण के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं—

1. मकान निर्माण के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि लकड़ी की रचनाएँ सीधे मिट्टी के सम्पर्क में नही होनी चाहिए। उनके नीचे जस्तेदार लोहे की पतली चद्दर लगाने से दीमक का आक्रमण नही होता है।

2. मकान बनाते समय नींव में बी.एच.सी. अथवा एल्ड्रिन चूर्ण मिलाने से दीमक का प्रकोप नहीं होता है।

3. घरो मे लकडी की आलमारियों, कप बोर्ड आदि में बी एच.सी. के चूर्ण के बुरकाव से दीमक का नियन्त्रण हो सकता है।

4. यदि दीमक के निकलने के स्थान/बिल का पता लग जाय तो उसमे 0·5 प्रतिशत एल्ड्रिन का घोल डालने से भी नियन्त्रण हो सकता है।

गण—लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)

(1) जाला वाला कपड़े का पतंगा—टीनिओला बिसेलिएला (Tineola bisseliella Hummel) (चित्र 57)

कुल—टिनिडी (Tinaeidae)

यह पतगा छोटा, भूरा लगभग 1/4 इंच लम्बा होता है (इसके पंख सतह
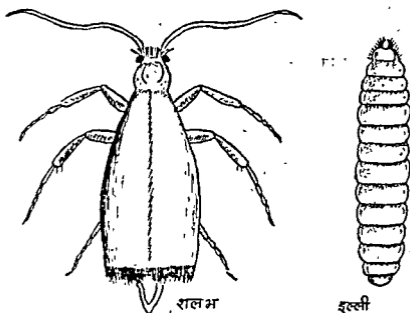
चित्र 57 जाला वाला कपड़े का पतंगा- टीनिओला बिसेलिएला

झालरदार, बालयुक्त होते हैं। रोशनी से दूर रहता है तथा घर के अंधेरे स्थान में उड़ता हुआ देखा जा सकता है। क्षति केवल डिम्भक द्वारा की जाती है, जो केराटिन युक्त पदार्थों जैसे ऊन, बाल, फर, चर्म, पख आदि को खाते हैं। इनका ग्रसन प्रायः लार, मूत्र, भोजन के अवशेष गिरने से गंदे हुए सामान पर होता है। इनके द्वारा बनायी गयी विशेष प्रकार की रेशमी नलिकाओं द्वारा इनके ग्रसन की पहचान हो सकती है। अधिक ग्रसन होने पर कपड़ों में छिद्र हो जाते हैं तथा कभी-कभी पूरा का पूरा कपड़ा ही समाप्त हो जाता है। इनका ग्रसन प्रायः अंधेरे कमरों में, जहां वायु व प्रकाश के पहुँचने की व्यवस्था नहीं होती, अधिक होता है।

जीवन-इतिहास—मादा पतंगा कपड़ों पर छोटे, चमकीले अण्डे देती है, परिस्थिति के अनुसार डिम्भक का विकास-काल 5 सप्ताह से कई माह तक होता है। डिम्भक अपने रहने के लिए एक रेशमी नलिका बनाता है जिसके अन्तिम सिरे पर कोशित बनता है, कोशित-काल 2–4 सप्ताह होता है। एक वर्ष में इसकी तीन पीढ़ियां हो सकती हैं।

नियन्त्रण—1. घर में सफाई, प्रकाश और हवा की समुचित व्यवस्था होने पर इसका ग्रसन नहीं होता है।

2. कपड़ों में नेफ्थलीन की गोलियां डालकर रखने से भी इसका आक्रमण नहीं होता है।

3. कार्पेट के नीचे डी.डी.टी. 5 प्रतिशत चूर्ण अथवा एल्ड्रिन 5 प्रतिशत चूर्ण का बुरकाव अथवा डी.डी.टी. 5 प्रतिशत/एल्ड्रिन एक प्रतिशत के छिड़काव द्वारा भी इसे नष्ट किया जा सकता है।

(2) कपड़ा/फर का पतंगा—टीनिया पेलिओनेला (Tinaea pellionella) (चित्र 58) टी० पैकीस्पिला (T. pachyspila)

कुल—टिनिडी (Tinaedae)

इसका पतंगा गंदे-पीले रंग का आकार में छोटा होता है। पंख के आर-पार इसकी चौड़ाई 1·25 से.मी. होती है। कीट ग्रसित कपड़ों को झड़काने पर इसके पतंगे इधर-उधर उड़ते हुए देखे जा सकते हैं। ये रोशनी की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। ये भी टीनिओला की भांति केराटिन युक्त पदार्थों जैसे ऊनी कपड़ों आदि को क्षति पहुँचाते हैं। इनका आक्रमण अंधेरे, गर्म व नम स्थानों पर अधिक होता है। क्षति डिम्भक ही पहुँचाते हैं।

चित्र 58 कपड़े का पतंगा · टिनिया पेलियोनेला

जीवन-इतिहास—टीनिया पेलिओनेला की मादा अपने डिम्भक के भाद्य पदार्थों पर अण्डे देती है। एक मादा लगभग 75 अण्डे दे सकती है। सामान्य परिस्थिति जैसे 20°C ताप तथा 90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर लगभग 4–5 दिन में अण्डों से डिम्भक निकलते हैं। डिम्भक गंदे सफेद अथवा पीले रंग के होते हैं। ये ऊन, बाल, मृत कीड़े, चमड़ा तथा दूध के पाउडर को खाते हैं। डिम्भक अपने रहने के लिए रेशमी, नली के आकार का घर बनाते हैं, जिसको साथ लिए घूमते हैं। पूर्ण विकसित डिम्भक लगभग 2·5 से.मी. लम्बा होता है। डिम्भक के कोश के अन्दर ही कोशित बन जाता है। कोशित-काल लगभग 10 दिन होता है। इसका जीवन लगभग 6 सप्ताह में पूरा हो जाता है। कोशित से निर्गमन के तुरन्त बाद नर-मादा सम्भोग करते हैं।

एक वर्ष में इनकी 3–4 पीढ़ियाँ होती हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में डिम्भक काल 1–2 वर्ष भी हो सकता है, मैसूर में कालीनों के नीचे के ऊपर रेशमी नली में होफिया पैकीस्पिला के डिम्भक पाये गये हैं।

नियन्त्रण—1. कपड़ों को साफ-सुथरा तथा धूप में सुखाकर रखने पर इसका आक्रमण नहीं होता है।

2. कमरों में स्वच्छता, हवा व प्रकाश की अच्छी व्यवस्था होने पर भी इसका आक्रमण नहीं होता है।

3. टीनिओला के नियन्त्रण के लिए उपयोग किए गए रसायन इसके लिए भी उपयोगी होते हैं।

(3) मोम का पतंगा—गैलेरिया मेलोनेला (Galleria mellonella Linn.) तथा एकिओरा ग्रिसेला (Achlora grisella Fabricius)

कुल—ग्रैलेरिडी (Gralleridae)

ये मधुमक्खी के छत्तों में लगी तथा घर में रखी मोम को क्षति पहुँचाते हैं। केवल मोम पर ही ये जीवित नहीं रह सकते, मोम के अलावा ये परागकण, निर्मोक तथा प्रोटीनयुक्त पदार्थों को खाते हैं। पतंगा हल्के कत्थई व भूरे रंग का, पंख के आर-पार 25–40 मि.मी. चौड़ा होता है, प्राय. भारतवर्ष के मैदानी भागों में पाया जाता है।

जीवन-इतिहास—यह कीट मार्च से अक्टूबर तक सक्रिय रहता है, जाड़े में यह डिम्भक अथवा कोशित के रूप में सुसुप्तावस्था में रहता है। मार्च-अप्रैल में निर्गमन के बाद नर-मादा मधुमक्खी के छत्ते से बाहर सम्भोग करते हैं, मादा पुनः रात्रि में जब मधुमक्खियाँ सक्रिय नहीं रहती तो छत्ते के अन्दर प्रवेश कर जाती हैं। छत्ते की दरारों में मादा झुंड में अण्डे देती है। अण्डे सफेद व कोमल होते हैं। एक मादा अपने दो सप्ताह के जीवन-काल में एक हजार तक अण्डे दे सकती है। अण्डों का ऊष्मायन-काल 7–18 दिन होता है, डिम्भक छत्ते के छोटे-छोटे टुकड़ों अथवा अन्य एकत्रित गंदे पदार्थ को खाते हैं। मधुमक्खियों से सुरक्षा के लिए ये छत्ते के अन्दर अपने लिए रेशमी नली सी बनाकर उसी में रहते हैं और भोजन करते हैं। डिम्भक 5–7 बार निर्मोक बदलकर लगभग 4 सप्ताह में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं। पूर्ण विकसित डिम्भक मोटा रेशमी कोश बनाकर उसी के अन्दर कोशित में परिवर्तित हो जाते हैं। कोशित-काल एक सप्ताह होता है, पूरा जीवन-चक्र लगभग 6–7 सप्ताह में पूर्ण हो जाता है। एक वर्ष में इसकी कई अतिव्यापन (over-lapping) पीढ़ियाँ होती हैं।

इनके ग्रसन के कारण मधुमक्खियों को अपने अण्डे बच्चों की देखरेख में बाधा आती है। अधिक ग्रसन होने पर पूरे छत्ते में जाले ही जाले हो जाते हैं और मधुमक्खियाँ ऐसे छत्तों को छोड़कर भाग जाती हैं।

नियन्त्रण—यदि मधुमक्खी रहित छत्ते में ग्रसन हो तो एल्यूमीनियम फास्फाइड/ई.डी.सी.टी./मेथाइल ब्रोमाइड द्वारा धूमन करना चाहिए। लेकिन जिन

छत्तों में मधुमक्खियाँ रहती हों उनमें ग्रसन का नियन्त्रण करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :

(i) मधुमक्खी के छत्ते के सभी छेद व दरार बन्द कर देने चाहिए।

(ii) छत्ते के पेंदे पर लगी सम्पूर्ण गन्दगी को साफ कर देना चाहिए।

(iii) मोम व छत्तों को वायुरोधी डिब्बों में बन्द करके रखना चाहिए।

(iv) छत्ते के अन्दर का प्रवेश-द्वार छोटा कर देना चाहिए ताकि मधुमक्खियाँ उसकी भली प्रकार सुरक्षा कर सकें।

गण—ऑर्थोप्टेरा (Orthoptera)

झींगर—ग्राइलोडेस सिजिलेटस (Gryllodes sigillatus Linn.) (चित्र 59) तथा ऐकटा डोमेस्टिका (Acheta domestica Linn.)

कुल—ग्राइलिडी (Gryllidae)

ग्राइलोडेस सिजिलेटस प्रायः गर्म व नम स्थान विशेषकर घर, भण्डार तथा दुकान के अन्दर पाया जाता है, जहाँ खाद्य सामग्री आसानी से उपलब्ध हो सकती है। बरसात के मौसम में तथा उसके बाद यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। घरों में यह अपनी विशेष प्रकार की तीखी आवाज द्वारा पहचाना जा सकता है। यह रात्रि में सक्रिय रहता है तथा दिन में अंधेरे स्थानों में छिपा रहता है।
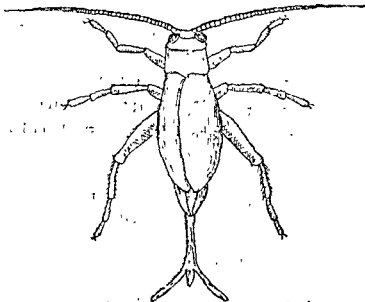
चित्र 59. झींगर- ग्राइलोडेस सिजिलेटस

झींगर सर्वाहारी होते हैं तथा अनाज से बनी वस्तुओं से लेकर हरी सब्जी, सड़े हुए पदार्थ, ऊनी व रेशमी कपड़े आदि को खाते हैं। इनके लिए नमी बहुत आवश्यक है। इसके अभाव में ये कुछ ही दिन में मर जाते हैं।

ग्रा. सिजिलेटस का रंग गंदा पीला होता है तथा इसके शरीर व पैर पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे होते हैं। मादा पंखहीन होती है तथा नर के आगे वाले पंख कड़े व भारी होते हैं। जिन्हें टेगमिना (tegmina) कहते हैं। नर व मादा दोनों के पश्च भाग के अन्त में एक जोड़ी सर्काई (cerci) होते हैं। मादा में दोनों सर्काई के मध्य एक अतिरिक्त लम्बी, भाले जैसी रचना होती है जिसे अण्ड निक्षेपक (ovipositor) कहते हैं, ये प्रायः अपनी शक्तिशाली पिछली टाँगों से फुदकते हैं।

एक्टा डोमेस्टिका गहरे कत्थई रंग का होता है तथा प्रायः खेत में पाया जाता है, कभी-कभी घरों में भी पाया जाता है। यह गर्म कपड़ों को काटकर क्षति पहुँचाता है। इसके नर तथा मादा दोनों पंखयुक्त होते हैं। आगे वाले पंख कड़े व भारी होते हैं, पीछे वाले पंख लम्बे, कागज की तरह व इस प्रकार मुड़े हुए होते हैं कि विश्राम के समय दोनों सर्काई के बीच में पूँछ जैसी रचना बनाते हैं।

जीवन-इतिहास—मादा नम मिट्टी के गड्ढे अथवा छेद में अण्डे देती है। एक मादा 30 अण्डे दे सकती है। लगभग 8–10 दिन में अण्डे से फूटकर शिशु बाहर निकलते हैं। शिशु 8–9 बार निर्मोक परिवर्तन के बाद लगभग 6 सप्ताह में प्रौढ़ बन जाते हैं। शिशु तथा प्रौढ़ दोनों ही क्षति पहुँचाते हैं। इसकी वर्ष में 2–3 पीढ़ियाँ होती हैं।

नियन्त्रण—तिलचट्टे के नियन्त्रण के लिए उपयोग किए गए उपाय से इसका भी दमन हो जाता है।

गण—सोकोप्टेरा (Psocoptera)

पुस्तक यूका—लाइपोसेलिस ट्रान्सवैलेन्सिस (Liposcelis transvaalensis Enderlein) तथा ला० डिविनीटोरियस (L. divinitorius) (चित्र 60)

कुल—सोसिडी (Psocidae)

ये अत्यन्त छोटे, पंखहीन, कोमल कीट होते हैं। प्रायः अंधेरे, नम तथा गंदे स्थानों, पुरानी पुस्तकें, खाद्यान्न भण्डार तथा संग्रहालयों में पाए जाते हैं। अनाज से बनी वस्तुएँ, मरे हुए जन्तु, गोंद, कवक, सूखे हुए कीट तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों पर ये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इनके मुखांग काटने तथा चबाने के उपयुक्त होते हैं।

वैसे तो इनके द्वारा कोई विशेष क्षति नहीं होती है पर संख्या अधिक होने पर तथा बहुत दिनों तक सफाई नहीं करने पर ये काफी क्षति कर सकते हैं।

पुस्तकों की बाइन्डिंग, संग्रह की गई वनस्पति व जन्तुओं को भी इनसे क्षति होती है।

चित्र 60. पुस्तक यूका - लाइपोसेलिस डिविनीटोरियस

जीवन-इतिहास—प्राय: नम स्थानों पर तथा खाद्य पदार्थों के आस-पास ही मादा अण्डे देती है। अण्डे से निकलकर शिशु पास मे विद्यमान खाद्य-सामग्री को खाकर जीवन-निर्वाह करता है, कई बार निर्मोक परिवर्तन के बाद यह प्रौढ़ बन जाता है।

नियन्त्रण—1. कम ग्रसन की अवस्था में सफाई करने अथवा ग्रसित सामग्री को धूप मे सुखाने से ये नष्ट हो जाते है।

2. यदि पुस्तकालय/संग्रहालय मे अधिक ग्रसन हो तो फास्फीन गैस से उनका धूमन करना चाहिए।

गण—साइफनेप्टेरा (Siphonaptera)

पिस्सू—जीनोप्सिला कीओपिस (Xeropsilla cheopis Rothschild) (चित्र 61)

कुल—प्युलिसिडी (Pulicidae)

यह समस्त विश्व मे पाया जाता है तथा समतापी प्राणियो की त्वचा पर बाह्य परजीवी है। यह एक पोषी से दूसरे पोषी पर जाता रहता है। पास्च्युरेला पेस्टेस (Pasturella pestes) नामक बैक्टीरिया से उत्पन्न होने वाली ब्यूबोनिक प्लेग (Bubonic plague) जैसी भयंकर संक्रामक बीमारी को फैलाने में यह सहायक होता है। यह पंखहीन तथा कठोर त्वचा वाला होता है। इसके मुखांग वेधन व चूषक प्रकार के होते हैं। इसकी टाँगे लम्बी होती हैं जिनसे फुदकने में सहायता मिलती है। बीमारी फैलाने के अलावा इनके काटने से कष्ट होता है तथा खुजली मचती है।

कुछ पिस्सू कुत्ते तथा रोडेन्ट टेप वर्म (Rodent tape worm) के पोषी भी होते है।
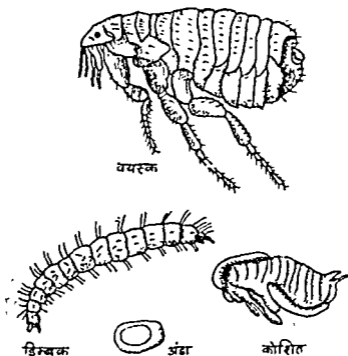
चित्र 61 पिस्सू - जीनोप्सेला कीओपिस

जीवन-इतिहास—इनका प्रजनन वर्ष भर होता है। मादा पिस्सू धूल, बिस्तर अथवा पोषी के शरीर पर अण्डे देती है। अण्डे बालों पर से फिसलकर जमीन पर गिर जाते हैं। दो से चौदह दिन के ऊष्मायन-काल के बाद इनमें से शिशु निकलते हैं। शिशु डिम्भक पतले सफेद रंग के होते हैं तथा अपने काटने व चबाने वाले मुखांगों से चूहा आदि के मल को खाते हैं।

डिम्भक अवस्था 1–5 सप्ताह की होती है। पूर्ण विकसित डिम्भक अपने लिए एक रेशमी कोश तैयार करता है जिसके अन्दर कोशित में परिवर्तित हो जाता है। इससे 1–5 सप्ताह में प्रौढ पिस्सू निकलता है। जाडे के दिनों में यह कोशित रूप में ही निष्क्रिय अवस्था में पड़ा रहता है। परिस्थिति के अनुसार इसका जीवन-चक्र 2 सप्ताह से 2 वर्ष में पूरा होता है।

नियन्त्रण—1 इसके नियन्त्रण के लिए घरों को चूहामुक्त रखना सबसे प्रमुख आवश्यकता है।

2. मकान स्वच्छ व हवादार होना चाहिए।

3. घरों में तथा आस-पास डी॰ डी॰ टी॰ 5 प्रतिशत, क्लोर्डेन 2 प्रतिशत, लिन्डेन 1 प्रतिशत अथवा मेलाथियान 0·5 प्रतिशत के छिडकाव से इनका नियन्त्रण हो सकता है।

गण—थाइसेन्यूरा (Thysanura)

रजत मछली—लेपिज्मा सैकेराइना (Lepisma saccharina Linn.) (चित्र 62) तथा थर्मोबिया डोमेस्टिका (Thermobia domestica Packard)

कुल—लेपिज्मिडी (Lepismidae)

चित्र 62 रजत मछली-लेपिज्मा

यह निम्न कोटि का गृहवासी नाशक जन्तु है। यह गर्म व नम मकानों, पुरानी पुस्तक-पुस्तिकाओं तथा दीवार से लटकती हुई तस्वीरों के पीछे प्रायः पाया जाता है। इसकी दो प्रमुख जातियाँ हैं—

लेपिज्मा सैकेराइना गाजर के आकार का पंखहीन, कोमल, चमकीला, लगभग 13 मि०मी० लम्बा कीट है। इसके शरीर के अन्तिम सिरे पर तीन लम्बी, खण्डयुक्त रचनाएँ होती हैं।

थर्मोबिया डोमेस्टिका का आकार भी ले० सैकेराइना जैसा ही होता है, पर इसके शरीर पर कुछ काले, सफेद धब्बे होते हैं। यह अपेक्षाकृत अधिक गर्म स्थानों जैसे—चिमनी तथा आग की भट्टी के आस-पास पाया जाता है।

ये खाद्यान्न, सब्जी तथा अन्य स्टार्चयुक्त पदार्थों को खाते हैं। पुस्तक की बाइन्डिंग में उपयुक्त गोंद तथा उसके पन्नों को खाकर क्षति पहुँचाते हैं। कभी-कभी किताबों के पन्नों में छेद कर देते हैं। इसके अलावा स्टार्च लगे तथा रेशम के कपड़ों को भी क्षति पहुँचाते हैं। इनके मुखांग काटने व चबाने वाले होते हैं।

जीवन-इतिहास—ये गर्म व नम जलवायु में वर्ष भर सक्रिय रहते हैं। मादा कीट दरारों अथवा अन्य छिपे हुए स्थानों पर 7–12 सफेद अण्डे देती है। अण्डों का ऊष्मायन-काल 6–10 दिन होता है। अण्डों से निकलकर शिशु 7–8 निर्मोक रूप के बाद प्रौढ़ बन जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में इसका पूर्ण विकास तीन माह में हो जाता है।

नियन्त्रण—1. इनको नष्ट करने के लिए निम्न प्रकार से बना विष-चुग्गा इनके रहने के स्थान के आस-पास रखना चाहिए—

गेहूँ का आटा	200 भाग
सोडियम फ्लोराइड या	
सफेद आर्सेनिक	16 भाग
पिसी हुई चीनी	10 भाग
पिसा हुआ नमक	5 भाग
अथवा	
पैरिस ग्रीन	1 चम्मच
गोंद (Glue)	0. 56 लीटर

2. डी. डी. टी./बी. एच. सी./मैलाथियान 5 प्रतिशत अथवा कार्बेरिल 2 प्रतिशत चूर्ण के बुरकाव से भी ये नष्ट हो जाते हैं।

□□□

8

संचित अनाज तथा गृहवासी नाशक कीटों का संग्रह व परिरक्षण

थाइसेन्यूरा—इस गण का प्रमुख नाशी कीट रजत-मछली पुरानी पुस्तकें-पुस्तिकाओं, दीवार पर टंगे कलेण्डर अथवा चित्रों के पीछे छिपी हुई पाई जाती है। इसे सुषव (Alcohol) से गीले ब्रुश, चिमटी अथवा एस्पिरेटर (Aspirator) द्वारा एकत्रित किया जा सकता है। इसे 80 से 95 प्रतिशत सुषव मे सुरक्षित रखा जाता है।

डिक्टिग्रोप्टेरा व ग्रार्थोप्टेरा—आकार में बड़ा होने के कारण इन गणों के कीटों जैसे—तिलचेटा व झींगर आदि को आसानी से देखा व एकत्रित किया जा सकता है। रात्रि में चुग्गा डालकर इन्हें एक स्थान पर आकर्षित करके जाल, पाश अथवा चिमटी द्वारा एकत्रित किया जा सकता है। इन कीटों को 70–80 प्रतिशत सुषव में या शुष्क रूप मे सुरक्षित रखा जा सकता है। शुष्क परिरक्षण के लिए इनके दाएं टेग्मिना के लगभग बीच मे पिन लगाना चाहिए। इनके पंख फैलाये नही जाते।

आइसोप्टेरा—इस गण के कीट-दीमक को ग्रसित लकड़ी, कागज, कपड़ा आदि से झटका देकर अलग किया जा सकता है। इसके बाद गीले ब्रुश अथवा चिमटी द्वारा इकट्ठा किया जा सकता है। इसे 70–80 प्रतिशत सुषव मे सुरक्षित रखा जाता है।

सोकोप्टेरा—इस गण के कीट जैसे—पुस्तक यूका को भी गीले ब्रुश या चिमटी द्वारा एकत्रित करके 80 से 90 प्रतिशत सुषव मे सुरक्षित रखा जाता है।

मैलोफैगा, एनोप्लूरा व साइफनेप्टेरा गण के कीटों जैसे—पक्षी यूका, शरीर यूका तथा पिस्सू आदि को बारीक कंघे अथवा चिमटी की सहायता से पोषी के शरीर से अलग किया जा सकता है। इसके बाद इन्हें सुषव से गीले ब्रुश से उठाकर 70–75 प्रतिशत सुषव मे सुरक्षित रखना चाहिए।

हेमीप्टेरा—इस गण के कीट जैसे—खटमल को गीले ब्रुश या चिमटी मे पकड़कर एकत्रित किया जा सकता है। इसके बाद इन्हें 70 प्रतिशत सुषव में अथवा शुष्क रूप में परिरक्षित किया जा सकता है। शुष्क परिरक्षण के लिए स्कूटेलम अथवा दाएं हेमी एलिट्रा मे पिन लगाना चाहिए।

कोलिओप्टेरा—इस गण के कीटों को भी गीले ब्रुश अथवा चिमटी से पकड़ा व इकट्ठा किया जा सकता है। शुष्क परिरक्षण के लिए बड़े कीटों के दायें एलिट्रा मे पिन लगाना चाहिये। छोटे-छोटे कीट जैसे—धान का घुन, आटा भृंग आदि को कागज के छोटे-छोटे तिकोने टुकड़ों पर किसी गोंद से चिपका कर भी सुरक्षित रखा जाता है। इन्हें कागज पर इस प्रकार तिरछा चिपकाना चाहिये ताकि पैर व उदर का भाग दिखाई दे सके। इसमे इनके अध्ययन में सुविधा होती है।

लेपिडोप्टेरा—इस गण के कीट जैसे—आलू का पतंगा, बादाम का पतंगा आदि उड़ने में अधिक सक्षम होने के कारण जाल द्वारा अथवा सीधे विष शीशी (Poison bottle) में पकड़े जा सकते हैं। जाल द्वारा पकड़कर भी इन्हें तुरन्त विष शीशी मे डाल देना चाहिए ताकि इनके पंख के ऊपर के शल्क नष्ट न हो। इनका शुष्क परिरक्षण किया जाता है। इनके वक्ष में पिन लगाकर तथा सेटिंग बोर्ड पर पंख फैलाकर रखा जाता है।

डिप्टेरा—इस गण के कीट मच्छर-मक्खी आदि को जाल अथवा पाश द्वारा पकड़ा जा सकता है। पकड़ने के बाद विष शीशी में डालकर मार देना चाहिए और पुनः तुरन्त पिन करके रखना चाहिए। पिन वक्ष में मध्य रेखा के एक ओर लगाना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि इनके शरीर के ऊपर के बाल नष्ट न हों।

हाइमेनोप्टेरा—इस गण के कीट जैसे—ततैया, मधुमक्खी, चींटी आदि डंक मारते हैं अथवा अपने मजबूत जबड़ों से काट सकते हैं। अतः इन्हें पकड़ते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। इनको भी डिप्टेरा गण के कीटों की भाँति वक्ष मे पिन लगाकर शुष्क परिरक्षित किया जाता है। इन्हे 70–80 प्रतिशत सुषव मे भी परिरक्षित किया जा सकता है।

परिरक्षित कीटों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। शुष्क रूप मे परिरक्षित कीटों के डिब्बों में समय-समय पर नैफ्थेलीन की गोलियाँ अथवा रूई के साथ बेन्ज़ीन या क्लोरोफार्म डालना चाहिए ताकि अन्य नाशी कीटों का आक्रमण न हो सके। सुषव में परिरक्षित कीटों की शीशियों में द्रव की मात्रा का ध्यान रखना चाहिए ताकि वे सूखने नहीं पाएँ।

परिरक्षित कीट का नाम, गण, कुल, पोषी का नाम, एकत्रित करने की तिथि तथा स्थान व एकत्रित करने वाले व्यक्ति का नाम सम्बन्धी जानकारी एक कागज पर लिख कर पिन में लगा देना चाहिए अथवा शीशी के ऊपर चिपका देना चाहिए।

OCG

परिशिष्ट-I

References

1. Adams, J. M. 1977. A bibliography on post harvest losses in cereals and pulses with particular reference to tropical and sub-tropical countries. Trop. Prod. Insti. G. 110.
2. Agrawal, N. S., C. M. Christensen and A. C. Honson, 1957. Grain storage fungi associated with granary weevil. J. Econ. Entomol. *50* (5) : 659-663.
3. Alexander, P., J. A. Kitchener and H. V. A. Briseac, 1944. Inter dust insecticides. I. Mechanism and action. Ann. Appl. Bio. *31*: 143-149.
4. Amos, T. G. and S. N. Dennler, 1969. A comparison of three strains of Oryzaephilus surinamensis (Coleo. Silvanidae) on a temperature moisture gradient. J. Stored Prod. Res. *5*, 173-175.
5. Anonymous. 1966. International rules for seed testing. Proc. Int. Seed Test. Assoc. *31*: 1-152.
6. Anonymous. 1970. Sound as a rodent deterrant. Bull. Grain. Tech. *8*: 71.
7. Anonymous. 1975 a. Rs. 5,000 crores loss due to pests yearly. Pesticides Information I (1): 12.
8. Anonymous. 1975 b. Use of vegetable oil against pulse beetles. Annual report CPPTI pp. 41-43, 1974-75. Indian J. Plant Prot. *3* (1): 101.
9. Anonymous. 1976 a. वैज्ञानिक विधि से अन्न का भण्डारण करें। कृषि दर्शन व ग्राम सेवक 5 (12): 7.
10. Ashman, F. 1970. Food storage manual. Prepared by Trop. Prod. Centre, Ministry of Overseas Development F.A.O. Chap. 10 pp. 351-366.
11. Back, E. A. and E. I. Cotton. 1926. Biology of the saw-toothed grain beetle Oryzaephilus surinamensis, L. J. Agric. Res. *33*: 435-452.

12. Bailey, J. B. and J. E. Swift, 1968. Pesticide and Information Safety Manual. University of California, Berkley, U.S.A.
13. Baker, T.W. 1963. The protection of stored products in crop protection by G. J. Rose. Leonard Hill, London.
14. Bhatnagar, A. P. and Harcharan Singh, 1970. Wheat grain moisture requirement under airtight storage condition. J Agric. Engg. 7: 46-59.
15. Bhatnagar, A P. 1972. Annual Progress Report. Research Scheme on storage, drying, grading and handling of farm products. Punjab Agric. University, Ludhiana.
16. Bindra, O. S. and Harcharan Singh. 1977. Pesticide Application Equipment. Oxford and IBH, New Delhi.
17. Bindra, O. S and H. S Toor. 1972. The common harmful birds of Punjab and their control. Punjab Agric. University Publication, India.
18. Birch, L. C. 1945. The mortality of **Calandra oryzae** L. (small strain) and **Rhizopertha dominica** Fab. in wheat at different moisture contents. Aust. J. Expt. Biol. Med. Sci. 23 (2). 141-145.
19. Brazelton, R. W., N. B., Akesson and W.E. Yates. 1972. The safe application of agricultural chemicals—equipments and caliberation. University of California, Berkley.
20. Burges. H. D. 1957. Studies on the dermestid beetle **Trogoderma granarium** Everts. Identification and duration of the developmental stages Ento. Monthly Mag. 93. 105-110.
21. Bruce, R. B., A. J. Robins and T. O. Tuft. 1962. Phosphin residue from phostoxin treated grain. J. Agric. Ed. Chem. 10: 18-21.
22. Calderon, M. 1974. The possible role of aeration in the control of stored product insects in warm climates Proc. First Int. Working Conf. Stored Product Entomology, Savannah Georgia, U.S.A.
23. Carlson, S. D. and H. J. Ball. 1962. Mode of action and insecticidal value of a diatomacious earth as a grain protectant J. Econ. Entomol. 55: 944-970.
24. Chatterjee, S. 1953. Effect of humidity on some pests of stored cereals. Indian J. Ent. 15: 327-339.
25. Chester, J. M. and C. M. Christenson. 1974. Ann. Rev. Phytopathology 12: 303-330.

26. Chiu, S. F. 1939. Toxicity studies of some inert materials with rice weevil and granary weevil. J. Econ. Ent. *23*: 810-821.

27. Christenson, C. M. and H. H Kaufmann. 1969. (In grain storage sanitation by S. K. Majumdar and T. S. Venugopal 1969. Academy of Pest Control Science India pp. 14-34).

28. Christenson, C. M. 1974. Storage of cereals grains and their products. Ann. Assoc. Cereal Chem. St. Paul MN.

29. Christenson. C. M. and Kaufmann. 1969. The role of fungi in quality loss. Univ. Minn. Press. Minneapolis MN.

30. Commonwealth Agriculture Bureaux. 1971. Crop. loss assessment methods (F.A.O. Manual).

31. Coombs, C.W. and G.E. Woodroffe. 1965 Some factors affecting the longevity and oviposition of Ptinus tectus Boieldieu (Coleo : Ptinidae) which has relevance to success among grain beetles. J. Stored Prod. Res. *17*: 117-127.

32. 1962. Some factors affecting mortality of eggs and newly emerged larvae of Ptinus tectus Boildieu (Coleo : Ptinidae) J. Anim. Ecol. *31*: 471-480.

33. Cotton, R. T. 1963. Pests of stored grain and grain products. Burgess, Minneapolis, U.S A.

34 Cotton, R T. and Winburn, T. F. 1941 Field infestation of wheat by insects attacking in farm storage. J Kansas Ento. Soc. *14* (1): 12-16.

35. Cotton, R. T. 1920. Rice weevil Sitophilus (Calandra) oryzae. J. Agric. Res. *20* (6): 602-614.

36 Dhaliwal, G. S. 1976. Intensity of insect infestation under rural storage conditions in the Punjab. Entomologist's News Letter VI (8-9): 49-59.

37. Fitzwater, W. D and Ishwar Prakash. 1966. Handbook of vertebrate pest control. Central Arid Zone Research Institute, Jodhpur, India.

38. Frings, H. and M. Frings. 1971. Sound production and reception of stored product insect pests.—a review of present knowledge. J. Stored Prod. Res. 7: 153.

39. Gibson, K. E. and A. K. Raina. 1973. First record of Bruchus lentis infesting lentils in India. J. Econ. Entomol. *66*(2): 515.

40 Graham, W. M. 1970. Warehouse ecology studies on bagged maize in Kenya. I. The distribution of adult Ephestia (Cadra) cantella (Walker) (Lep : Phycitidae). *J. Stored Prod. Res. 6:* 147–155.

41 Hall, D W 1955. Problems of food storage in tropical countries Ann Appl. Biol. *42:* 85–97.

42 Hayes, W. J *1963. Chemical handbook of economic poison.* Washington D. C. U. S Public health service No 476 Rev.

43. Heford, G. V. B. 1961. Food lost in store by insect attack SPAN *4:* 40-42

44. Hylnka, I. and A. D Robinson. 1964. In storage of cereal grains and their product (Ed. by Anderson, J. A.; Alcock, A. W) American Assoc. Cereal Chem. ST Paul Minnesota.

45. Horsefall, J L. 1928. Organic mercury compounds for the control of insects in stored seeds. J. Econ Entomol *21*(1): 147-150.

46. Howe, R. W. 1956 The biology of the two common storage species of Oryzaephilus (Coleo : Cucujidae) Ann. Appl. Biol. *44* (22): 341–355.

47. Howe, R. W. 1952 b The biology of the rice weevil (Calendra oryzae L). Ann. Appl. Biol. *39*; 168–180.

48. Hyde, M. B 1962. Airtight storage of grain. Ann Appl. Biol *50* (2): 362–364.

49. Hyde, M B , A. A. Baker, A. C. Ross and C. O. Lopez. 1974. Airtight grain storage. A. G. S. Bull. *17* F. A. O. Rome.

50. Indian Standards guide for handling cases of pesticide poisoning; Symptoms, diagnosis and treatment I. S. 4015 (Part II). Indian Standard Institution, New Delhi.

51. खरे, बिन्द्रा प्रसाद 1975 खाद्यान्न भण्डारण एवं हानिकारक जीव नियन्त्रण अनुवाद एवं प्रकाशन निदेशालय, गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (नैनीताल) उत्तर प्रदेश।

52. Khare, B. P. and N. S. Agarwal. 1964. Rodent and ant burrows as source of insect inoculum the threshing floors. Indian J. Ent. *26:* 97–102.

53. Khare, B. P. and N. S Agarwal. 1963. Effect of temperature and relative humidity, food material and density of insect population on the oviposition of *Sitophilus oryzae* Linn and *Rhizopertha dominica* Fab. Bull. grain Tech. *1:* 48–60.

54. Khare, B. P. and R. B. Mills. 1968. Development of angoumois moths in kernel of wheat, sorghum and corn as affected by site of feeding J. Econ. Entom 61: 450–452.

55. Khare, B. P. and N. S. Agrawal, 1962. Seasonal variation and peak period in the occurrence of Sitophilus oryzae L. and Rhizopertha dominica Fab Indian J. Ent. 24: 137–139.

56. Khare, B P, C. S. Sengar, K N Singh, R. K. Agrawal and H. N. Singh. 1972. Loss in grain due to insect feeding in wheat I. Indian J Agric. Res. 6 (2): 125–133

57. Khare, B. P. 1972. Insect pests of stored grain and their control in U. P. Res. Bull. 5, Final report of G. B. Pant University of Agriculture and Technology, Pantnagar, Pub. Pantnagar, Nainital, U. P.

58 Kozlowski, T. T. (Ed.) 1972. Seed Biology. Vol. II. Academic Press, New York and London.

59. Krishnamurthy, K. 1965. Use of radiation for disinfecting food grains. Bull. Grain. Tech. 3: 59–61.

60. Krishnamurthv, K. 1973. Storage of food grains in India. Trop. Stored Products Inf 25: 25–26.

61 Lal, S. P. 1975. Studies on storage fungi of wheat and maize. Ph D Thesis, I.A.R.I. (Unpublished).

62. Lees, A. D. 1955. The physiology of diapause in Arhtropods. Cambridge University Press.

63. Lefkovitch, L.P. and S.W. Pixton. 1967. Calibrating moisture meters J. Stored Prod. Res. 3: 81–83.

64. Lindgren, D. L., W. B. Sinclaire and P. J. Stapin. 1968. Residues in raw and processed food resulting from post harvest insecticidal treatment. J. Econ. Entomol. 47: 923–926.

65. Lindgren, D. L. and L. E. Vincent. 1960. The relation of moisture content and temperature of stored grain to the effectiveness of grain fumigants under forced circulation. J. Econ. Entomol. 53 (6): 1071–1077.

66. Lucas, C. E. and T. A. Oxley. 1946. Study of an infestation by Laenophloeus Sp. (Coleo; Cucujidae) in bulk wheat. Ann. Apl. Biol. 33 (3): 289–293.

67. MacDonald, D. and J. A. Brook. 1963. Growth of Aspergillus vans and production of alfatoxin in groundnuts. Trop. Sci. 5: 208–214.

68. Majumdar, S. K. and J. S. Venugopal. 1968. Pesticides minerals. Pesticides 190-199. Acad. Pest. Control Science, Mysore, India.
69. 1969 Grain sanitation. Academy Pest Control Science, India. 103 pp.
70. Malala, S. C., R. A. P. Kera and J. Kolhoun. 1969. Fusarium diseases of cereals V. A. technique for the examination of wheat seed infected with Fusarium culmorium Trans. Trans. Brit. Mycol. Soc 52: 187-193.
71. Marsh, R. W. (Ed. 1977. Systemic fungicides. Longman, New York.
72. Milner. M. and W. F. Geddes. 1946. Grain storage studies. III The relation between moisture content, mold growth and respiration of soybeans. Cereal Chem. 23: 225.
73. Monro, H.A.U 1969. Manual of fumigation for insect control. F. A. O. Agricultural studies 79 F. A. O Pub. pp. 380.
74. Mookherjee, P. B. 1964. Stored grain pests. Entomology in India. pp. 317-330.
75. Mookherjee, P.B., M G. Jotwani, P. Sircar and T. D Yadava. 1968. Studies on the incidence and extent of damage due to insect pests in stored seed. I. Cereal seeds. Indian J. Ent. 30 (1): 61-65.
76. Munro, J W. 1966. "Centrifugal force, in pests of stored products". Hutchinson, London.
77. Murton, R. K. and E. W Wright (Eds) 1968 The Problems of birds as pests. Institute of Biology, Academic Press, New York.
78. National Academy of Sciences 1970 Principles of Plant and Animal Pest Control Vol. 5 Vertebrate pests, Problems and Control, Washington D. C.
79. Neergaard, P. 1970. Seed borne diseases and Indian Agriculture Proc. Indian Nat. Sci. Acad. 36: 22-237.
80 Neergaard, P. 1973 Detection of seed borne pathogens by culture tests. Seed Sci. & Technol. 1: 217-254.
81. Neergaard, P. 1977 Seed Pathology. McMillan and Co. London Pg 681-703.
82. Neergaard, P. and A. Saad 1962 Seed health testing of rice A contribution to development of laboratory routine testing methods Indian Phytopath. 15: 85-111.

83. Oxley, T. A. 1948b. The Scientific Principles of Grain Storage. Northern Pub. Liverpool.

84. Oxley, T. A., Pixton. and R. W. Howe. 1960 Determination of moisture contents of cereal I. Interaction of type of Cereal and Oven method. J. Sci. Fd. Agric. *11*: 18-25.

85. Oxley, T. A. and G. Wickenden 1963. The effect of restricted air supply on some insects which infest grain. Ann. Appl. Biol. 51: 313-324

86 Pearman, J. V. 1928a Biological observations on British Psocoptera Ento. Mon. Mag. *64*: 179-186.

87 Pedersen, J. R. and R. A. Brown 1960. X-Ray Microscope to study the behaviour of internal infesting grain-insects. J. Econ. Entomol. *53* (4): 678-79.

88. Pedersen, J. R. Mill's G. J. Partida and D. A. Wilbur 1974 Manual of grain and cereal product insects and their control Deptt. Grain Sci. and Industry Kansas State University Manhattan

89. Petersons, A., V. Schegel, B. Hummel, L. S. Cuendent, W G Geddes and C M. Christensen 1956 Grain storage studies XXII Influence of oxygen and carbon dioxide concentrations on mould growth and grain deterioration Cereal Chem *33*. 52-66.

90. Pingale, S. V. 1964 Progress in handling of grain in storage in India Entomology in India pp. 331-351.

91 Pingale S. V., K. Krishnamurthy and T. Ramsivan 1967 Rats. Food Grain Technologist's Research Association, Hapur U.P. India.

92 Pixton, S W 1967 Moisture content—its significance and measurement in stored products; J. Stored Prod. Res. *3*. 35-47.

93 Pixton S. W. 1968 The effect of heat treatment on the moisture content/relative humidity equilibrium relationship of Mannitoba wheat. J. Stored Prod. Res *4*: 267-270.

94 Pixton S. W. and Sylvia Warburton 1973 Determination of moisture content and equilibrium relative humidity of dried fruits. Sultananas J. Stored Prod. Res *8*: 263-270.

95. Potters, C. 1935 The biology and distribution of Rhizopertha dominica Fab. Trans. R. Ent. Soc. London *83* (4): 441–483.

96. Pradhan, S. 1968 Analysis of grain storage problems in India. Indian J. Ent. *30*: 94–103.

97 Pradhan S and P. B. Mookherjee 1968 Pusa Bin for storage of grain. I. C. A. R. Technical Bulletin. *21*: 1–11.

98. Pradhan S, N. S. Agarwal and P. M. Thomas 1971 Policy regarding mixing of pesticides in food and food grains. Entomologist's News Letter *1* (4): 25–28.

99. Press A F and P. K. Harien 1966 Mortalities of red flour beetle adults and Indian meal moth larvae in nitrogen and carbon-di-oxide gases Georgian Ento. Soc. *1*: 15–17.

100 Pruthi, H. S. and Mohan Singh 1950 Pests of stored grain and their control. Indian J. Agric. Sci. *18* (4); 1–88.

101 Rahman, K. A. 1944 Studies on the stored grain pests in the Punjab II. Biology of Bruchus analis and Bruchus Chinensis Linn. Indian J. Agric. Sci. *12* (6): 851–854.

102. Rai. L., J. N. Sarid and S V. Pingale 1962 Fumigation of food grains in INDIA with hydrogen phosphide Bull. Grain Tech. *1*: 3–17.

103. Raina, A. K. 1970 Callosobruchus spp. infesting stored pulses (grain legumes) in India and a comparative study of their biology. Indian J. Ent. *33* (4): 303–310.

104 Renjen. P. L., M. V. Venkatesh and N. C. Joshi 1960 Plant Quarantine in India Sci. and Cult. *28*: 215–218.

105 Richards. O. W. 1947b Observations on grain weevils Calandra (Coleo : Curculionidae) I. General biology and oviposition. Proc. Zool Soc. *117* (1). 1–43.

106. Richards O. W. 1947b Seasonal variations in the numbers of some warehouse insects. *Proc. Royal Ent. Soc London 22* (1–3): 30-33.

107. Roberts, D. E. and D. B. Broker 1975 Grain drying with a recirculator Trans Am. Soc. Agric. Engrs. *18*: 181–184

108. Robinson, J 1970 Birds and pest control chemicals. Bird Study *17*: 195.

109. Siddiqui, M. R. 1977 Seed transmission of fungal diseases of sorghum (Sorghum vulgare) and bajra (Pennisetum typhoides) Seed and Farms *3*: 45-49.

110. Singh, Narain and R. R. Rawat 1977 Efficacy of some Indegenous Plant Products against **Callosobruchus chinensis** L. Unpublished Thesis J. N. K. V. V. Jabalpur.

111. Sinha, R. N. 1961 Insects and mites associated with hot spots in Farm Stored Grain Can. Entomol. *93*: 609-621.

112. Sinha, R. N. 1964 Mites of stored grain in Western Canada—Ecology and Survey Proc. Entomol. Soc. Manitoba *20*: 19-33.

113. Sinha, S. 1977 Seed transmission of fungal pathogens. Seed and Farms *3*: 53-63.

114. Simmons, Perez and G. W. Ellington 1924 Biology of the angoumois grain moth. J. Econ. Entomol. *17* (1): 41-45.

115. Solomon, M. E. and B. E. Adamson 1955 The power of survival of stores and domestic pests under winter conditions in Britain. Bull. Ent. Res. *46* (2): 311-355.

116. Solomon M. E. 1965. Archaeological records of storage pests **Sitophilus granarius (L)** (Coleo: Curculionidae) from the Egyptian Pyramid Tomb. J. Stored Product Res. *1*: 105-107.

117. Srinath, D., A. N. Raghunathan and S. K. Majumdar 1976 Stored Product insects as carriers of toxigenic fungi. Indian J. Ent. *38* (2): 189-191.

118. Srivastava K. N. 1948 Some observations on the life processes of **Bruchus analis** Fab. with special reference to nutritional factors Proc. National Acad. Sci. India *18*(56b): 87-103.

119. Srivastava S. K. 1976 Plant Protection in India. Problems and Prospects. PANS *22* (4): 467-473.

120. Srivastava S. K. 1975 Improving mud containers. Intensive Agriculture *13* (10): 14.

121. Stemley P. G. and D. A. Wilbur 1966 A colour characteristic for sexing live adults of lesser grain borer J. Econ. Entomo *59*: 760-761.

122. Suryanarayana, D. 1978 Seed Pathology. Vikas Pub. House Pvt. Ltd. New Delhi pp. 111.

123. Varma, B. K. 1977 Effect of atmospheric gases on pest infestation during storage and on keeping quality of walnuts. Entomologists News Letter VII (4): 13.

124. Varma, B. K. and N. H. K. Siddiqui 1977 Control storage pests through inert dusts. Rural India. *40* (3, 4): 107.
125. Walters, F. L. 1972 Control of storage insects by physical means. Trop. Stored Prod. Inf. *23*: 13-28.
126. Wigglesworth, V. B. 1944 Action of inert dusts on insects. Nature (London) *153*: 493-494.
127. Yadava, T. D. and N. C. Pant 1976 Improved Bamboo Basket for safe storage of wheat seed in Assam Region. Entomologist's News Letter. VI (11-12): 65.
128. Yadava T. D. and N. C. Pant 1977 Use of solar radiation Trap for drying and disinfestation of grain. Entomologist's News Letter. VII (1-2): 9-10.

परिशिष्ट—2

अंग्रेजी—हिन्दी नामावली

Absolute	पूर्ण/परिशुद्ध
Accepted Daily Intake	स्वीकृत दैनिक ग्राह्यता
Accurate	यथार्थ
Act	क्रिया
Acute	तीव्र
Adulteration	अपमिश्रण
Aerosol	वायु विलय/एरोसॉल
Agent	कारक
Agency	अभिकरण/एजेन्सी
Air tight	वायुरोधी
Alcohol	सुपव, एलकोहल
Amplifier	ध्वनि प्रवर्धक
Antena	शृंगिका/एन्टीना
Antibiotic	प्रतिजैविक
Anticoagulant	प्रति स्कंदक
Antifeedant	प्रतिभोजी
Antioxidant	प्रति ऑक्सीकारक
Apparent	आभासी
Aqueous	जलीय
Assessment	आकलन/निर्धारण
Authority	प्राधिकार/प्राधिकरण
Bareline	आधाररेखा
Batch	बैच
Belt	पट्टी, पट्टा
Biomass	जैवमात्रा/जीवभार
Blight	शीर्णता/अंगमारी
Block	खंड/ब्लॉक
Block stacking	खड चट्टा
Blotting paper	स्याही-सोख पत्र
Brat	चेंट
Brood	शाव/अंडभ्रूण
Buffer stock	मनीकरण भण्डार
Bug	बग
Bulk	आयतन/स्थूलता

Bulk Storage	विपुल/स्थूल भागमन संचयन
Bulb	शल्क कंद/कंद
Burrow	बिल
Cannibalism	स्वजाति भक्षता
Cannibalistic	स्वजाति भक्षी
Capsule	संपुट/कैप्सूल
Capture	प्रग्रहण
Carpenter ant	तक्ष चींटी
Case	कोश
Caste	प्रभेद
Category	संवर्ग
Caterpillar	इल्ली
Centepede	शतपदी
Cerci	सर्साई
Centrifugalforce	केन्द्रीय बल
Chamber	कोष्ठ कक्ष
Charcoal	चारकोल
Chronic	चिरकाली
Claw	नखर
Clay	चिकनी मिट्टी
Cluster	गुच्छ
Comb	कंकत
Cocoon	कोश/कोया
Cold hardy	शीत सहनशील
Colonizing	निवही
Colony	निवह/कालोनी
Complementary	पूरक
Complemental male	पूरक नर
Composition	संयोजन/संघटन
Concentration	सान्द्रता/सांद्रण
Condense	द्रवित संघनित करना
Condensation	द्रवण/संघनन
Contamination	संदूषण
Content	अंतर्वस्तु
Continuity	सांतत्य
Conversion factor	रूपान्तरण गुणांक
Converted	रूपान्तरित
Conventional	रूढ
Conveyor belt	संवाहक पट्टा
Cross	अनुप्रस्थ
Cross stacking	अनुप्रस्थ चट्टा

Crowding	सघनता
Cross Vein	अनुप्रस्थ शिरा
Crude oil	कच्चा अपरिष्कृत तेल
Curve	वक्र रेखा/वक्र
Custom	सीमा शुल्क
Cuticle	उपचर्म/क्यूटिकल
Decay	क्षय
Decaying	क्षयमाण
Decomposer	विघटक/अपघटक
Development	परिवर्धन/विकास
Diffusion	विसरण/विसार
Discolouration	अपवर्णता/विवर्णन
Disinfestation	विग्रसन
Disorder	अव्यवस्था/अपक्रम विकार
Dose	मात्रा
Dosage	मात्रा व्यवस्था मात्रा निर्धारण
Dump	अनिक्षेप/डम्प
Dunnage	डनेज
Egg Calyx	अंड चषक
Emergence	निर्गमन
Embryo	भ्रूण
Entolater	एन्टोलेटर
Enzyme	प्रकिण्व/एन्जाइम
Epidemic typhus	जानपदिक टाइफस
Equipment	उपस्कर
Error	त्रुटि
Excreta	उत्सर्ग
Exithole	निर्गम छिद्र
Exposure	अनावरण/उद्भासन
Exposure period	उद्भासन काल
Exuviae	निर्मोक
Factor	कारक/घटक
Family	कुल/परिवार
Fatal	घातक
Fermentation	किण्वन
Fertilization	निषेचन
Fertilized egg	निषेचित अण्डा
Filter paper	निस्यंदक पत्र
Fish pond ecosystem	मत्स्य ताल पारिस्थितिक तंत्र

Fixation	स्थिरीकरण
Flask	फ्लास्क
Floatation	उत्प्लवन
Fluorescence	प्रतिदीप्ति
Fluorescent	प्रतिदीप्तिशील
Follicle	पुष्क फालिकल
Forced aeration	प्रणोदित वायु प्रवाह
Function	प्रकार्य
Functional	प्रकार्यक
Functional Status	प्रकार्यात्मक स्तर
Fur	समूर/फर
Gallery	दीर्घा, गैलरी
Galvanized	जस्तेदार
Germ	जर्म
Germ portion	जनन भाग
Glue	सरेस
Grade	श्रेणी/कोटि
Grocer's itch	पंसारी-खुजली
Grub	भृंगक/ग्रब
Gut	आहार नली
Halogenated	हैलोजनित
Heat spot	गर्मस्थल
Hidden	प्रच्छन्न
Hopper	फुदक
Host	पोषी
Hydrated	जलयोजित
Hydration	जलयोजन/उदकन
Hydrolysis	जल अपघटन
Hulling	भूसा भरना
Immature	अपक्व/अप्रौढ़
Incubation	ऊष्मायन
Indian Standard	भारतीय मानक
Indigenous	देशी/देशज
Infection	संक्रमण
Infestation	ग्रसन
Infra Sound	अवध्वनि
Infra Sonic	अवश्रव्य
Inhalation	अन्तः श्वसन/निश्वसन
Inhibition	संदमन/निरोध
Instar	निर्मोक रूप/इंस्टार

Interaction	परस्पर-क्रिया
Irradiation	किरणन
Irritation	उत्तेजन शील
Isolation	पृथक्करण
Isolated	पृथक्कृत
Larva	डिम्भक डिम्भ
Larval duration	डिम्भक अवधि
Leakage	क्षरण
Lethal	घातक
Lesions	विक्षत
Lice	जूँ/यूका
Lipid	लिपिड
Lizard	छिपकली/गोधिका
Lodging	पतन
Loose smut	श्लथकंड
Louse	यूका/जूँ
Lump	पिंडक, लम्प
Lypophilic	द्रव स्नेही
Maggot	अपादक/मैगट
Mandibulate	चिबुकी
Mange	खाज
Management	प्रबन्ध
Mask	आवरण/मास्क
Mealy bug	चूर्णी मत्कुण
Mechanical injury	यांत्रिक क्षति
Mercurial	पारदीय
Metabolism	उपापचय
Metabolic product	उपापचयी उत्पाद
Microbial	सूक्ष्मजैवी
Microorganism	सूक्ष्म जीव
Mold/mould	फफूँदी
Money	मुद्रा
Moth	शलभ
Mouse	मूषक
Museum	संग्रहालय
Myopic	निकट दृष्टि
Nasute	नस्यूट
Nodule	ग्रन्थिका
Non reducing Sugar	अनपचयी शर्करा
Notified	अधिसूचित

Notification	अधिसूचना
Noxious	अनिष्टकारी
Nuisance	बाधा/कंटक
Nuptial	कामद/मैथुनी
Nymph	अर्भक/निम्फ
Operator	प्रचालक, आपरेटर
Optimum	अनुकूलतम
Order	गण
Oscillograph	दोलन लेखी/आसिलोग्राफ
Overlapping	अतिव्यापन
Ovicidal	अण्डनाशी
Ovipositor	अंड निक्षेपक
Packing	भराई
Pair	युग्म/युगल
Parameter	प्राचल/पैरामीटर
Paralysis	पक्षाघात/लकवा
Partide	कण
Pasture ecosystem	चारागाह पारिस्थितिक तंत्र
Penetration	वेधन
Periphery	परिधि, परिरेखा
Piercing and Sucking	वेधन व चूषक
Physiological	क्रियात्मक
Pit	गर्त
Plinth	प्लिथ
Plug	डाट/प्लग
Plumose	पिच्छली/प्लूमोस
Pollution	सदूषण
Post harvest	कटाई के बाद
Prevention	निवारण/निरोध
Private	व्यक्तिगत/निजी
Proof	अवरोधी/प्रमाण
Processing	ससाधन
Pupa	कोशित
Puparia	कोशितावरण
Pupal period	कोशित अवधि
Pupic region	जघन भाग
Purple	बैंगनी
Pustule	स्फोट
Qualitative	गुणात्मक
Quantitative	मात्रात्मक/परिमाणात्मक
Quarantine	संगरोध/क्वैरेन्टाइन

Race	प्रजाति
Radiation	विकिरण
Radiograph	विकिरण चित्र
Random	यादृच्छिक
Random Sample	यादृच्छिक प्रतिदर्श
Range	परास/सीमा
Rat proof	चूहा अवरोधी
Reaction	प्रतिक्रिया/अभिक्रिया
Reduced pressure	समानीत दाब
Reducing Sugar	अपचायी शर्करा
Recommended	अभिस्तावित
Refined oil	शोधित तेल
Refrigerated air	प्रशीतित वायु
Repellent action	प्रतिकर्षी क्रिया
Replicate	प्रतिकृत
Reproductive female	जननीय/जननात्मक मादा
Residue	अवशेष
Residual action	अवशिष्ट क्रिया
Respiration	श्वसन
Rodent	कृंतक/रोडेन्ट
Rostrum	तुंड/रोस्ट्रम
Sample	प्रतिदर्श, नमूना
Sampling	प्रतिचयन
Sand fly	सिकता मक्खी
Sanitation	स्वच्छता
Saprophytic	मृतजीवी
Scabies	पामा
Scalp	शिरोवल्क
Scavanger	अपमार्जक
Secondary	द्वितीयक
Secondary consumer	द्वितीयक उपभोक्ता
Serial number	अनुक्रमांक
Shed	शेड
Shed fumigation	शेड धूमन
Seiving	चालना/छानना
Silverfish	रजत मीनाभ
Simple stacking	साधारण चिति/चट्टा/चट्टी
Siphon	विनाल/साइफन
Skin follicle	त्वचा फालिकल
Slaughter house	बूचड़ खाना
Slurry	कर्दम/पिच्छिल
Sound proof	ध्वनि रोधी
Sore	व्रण

Species	जाति
Specification	विनिर्देश
Specimen	प्रतिदर्श/नमूना
Spiracle	श्वास रंध्र
Spill	अपिप्लाव/छलकन
Spoilage	विकृति/दूषण
Sprouting	अंकुरण
Stack	चिति/चट्टा
Stacking	चट्टा लगाना
Standard	मानक
Sterile	वंध्य
Stink gland	पूति ग्रन्थि
Stock Soluction	संभार/संग्रह विलयन
Strategy	रणनीति
Straw	तृण
Strawyellow	तृणपीत
Subcutaneous	अवत्वक
Sub sample	उपप्रतिदर्श
Subsistence	निर्वाह
Suborder	उपगण
Surface treatment	सतह उपचार
Survival	उत्तरजीविता/अतिजीविता
Sucking	चषण चूषक
Synthetic	संश्लिष्ट/कृत्रिम
Systemic	सर्वांगी
Tegmina	टेग्मिना
Temperature treshold	देहली ताप
Threshold	देहली/प्रभाव सीमा
Tick	कुटकी/किलनी
Tolerance limit	सहन सीमा
Toxic	अविषालु
Transfer	स्थानान्तरण
Transport	ढुलाई
Translucent	अल्पपारदर्शक
Truck dump	ट्रक डम्प
Trumpet	तूर्य
Tunnel	सुरंग
Ulcer	व्रण/अल्सर
Ultraviolet	परा बैंगनी
Unfertilized	अनिषेचित
Unreacted	अनभिक्रिन

Vagina	योनि
Vapour	वाष्प
Vapour pressure	वाष्प दाब
Vector	रोग वाहक
Vibrissae	दृढ़रोम/जृम्भशूक
Vein	शिरा
Wormblooded	नियत/समतापी
Warming agent	भय सूचक
Waste	अपशिष्ट/उत्सर्ग
Waterproof	जलसह
Weathering	अपक्षय/अपक्षयण
Weed	अपतृण/खरपतवार
Winnowing	निष्पावन
Wonder-trap	अद्भुत पाश

परिशिष्ट–3

कीटनाशियों की सहन-सीमा

क्रम संख्या	कीटनाशी का नाम	सामग्री	सहन सीमा/भाग प्रति दस लाख मि.ग्रा./कि.ग्रा.
1.	आल्ड्रिन, डाइ-एल्ड्रिन (अकेले अथवा किसी अन्य कीटनाशी के साथ	खाद्यान्न	0 01
		दूध व दूध उत्पाद	0.15
		अण्डा	0.1 (छिलका रहित अं के आधार पर)
		फल व सब्जी	0.1
		मांस	0.2
2.	कार्बेरिल	खाद्यान्न	1.5
		आलू	0.2
		कपास के बीज	1.0
		भिण्डी व पत्ती वाली सब्जी	10 0
3.	क्लोरडेन (सिस तथा ट्रान्स क्लोर्डेन के रूप मे)	खाद्यान्न	0.05
		दूध व दूध उत्पाद	0.05
		सब्जी	0.2
		फल	0 1
		चुकन्दर	0.3
4.	डी० डी० टी० (अकेले अथवा किसी अन्य कीट-नाशी के साथ)	आलू	3.5
		दूध व दूध उत्पाद	1 24 (सम्पूर्ण पदार्थ के आधार पर)
		मांस-मछली	7.00
		अण्डा (छिलका रहित)	0.5
		फल, सब्जी व आलू	3 5
5.	डायजिनान	खाद्यान्न	0 05
6.	डाइक्लो ास (नुवान	खाद्यान्न	1.0
		आटा	0 25
		सब्जी	0.5
		फल	0.1
7.	डाइकोफोल	फल व सब्जी	5 0
		चाय (सूखी)	5 0
8.	डाइमेथा ट	फल व सब्जी	2.0

9.	एन्डोसल्फान	फल व सब्जी	2.0
		कपास का बीज (बिनौला)	0.5
		बिनौले का तेल	0.2
10.	फेनिट्रोथियान	खाद्यान्न	0.02
		आटा	0.005
		दूध व दूध उत्पाद	0.05
		फल	0.5
		सब्जी	0.3
		मांस	0.03
11.	हेप्टाक्लोर	खाद्यान्न	0.01
		आटा	0.002
		दूध व दूध उत्पाद	0.15
		सब्जी	0.5
12.	हाइड्रोजन साइनाइड	खाद्यान्न	37.5
		आटा	3.0
13.	हाइड्रोजन फास्फाइड	खाद्यान्न	0.05
		आटा	0.01
14.	अकार्बनिक ब्रोमाइड	खाद्यान्न	25.00
		आटा	25.00
		फल	30.00
		सूखे फल व मसाले	100.0
15.	लिन्डेन	खाद्यान्न	0.25
		दूध व दूध उत्पाद	0.2
		फल व सब्जी	3.0
		अण्डा (छिलका रहित)	0.1
		मांस	2.0
16	मैलाथियान	खाद्यान्न	4 00
		आटा	1.00
		फल	4.00
		सब्जी	3.00
		सूखे फल	8.00
17.	मेथाइल पैराथियान	फल	0.2
		सब्जी	1.0
18.	पारर्मिदान	खाद्यान्न	0.05
		फल व सब्जी	0.2
19	पाइरेथ्रिन्स	खाद्यान्न	1.5
		आटा	0.5
		फल व सब्जी	1.0

माप का रूपान्तरण

लम्बाई

ब्रिटिश से मीटरी प्रणाली	मीटरी से ब्रिटिश प्रणाली
1 इन्च = 25 40 मि. मीटर	1 मि. मीटर = 0.039 इन्च
2.54 से. मीटर	1 से. मीटर = 0.394 इन्च
1 फुट = 30.50 से. मीटर	1 मीटर = 39.37 इन्च
0.305 मीटर	= 3 28 फुट
1 फुट = 0.914 मीटर	= 1.093 गज
1 मील = 1.609 कि. मीटर	1 कि. मीटर = 0 621 मील

क्षेत्रफल

1 वर्ग इन्च = 6.452 वर्ग सेन्टीमीटर	1 वर्ग से. मी. = 0 155 वर्ग इन्च
1 वर्ग फुट = 0.093 वर्ग मीटर	1 वर्ग मीटर = 1550 वर्ग इन्च
1 वर्ग गज = 0.836 वर्ग मीटर	= 10.764 वर्ग फुट
	= 1.190 वर्ग गज
1 वर्गमील = 2.590 वर्ग किलोमीटर	1 वर्ग कि.मी. = 0.390 वर्ग मील
1 एकड़ = 0.405 हेक्टर	1 हेक्टर = 2.471 एकड़

आयतन

1 घन इन्च = 16.39 घन से. मी.	1 घन से. मी = 0.061 घन इन्च
1 घन फुट = 28.316 लिटर	1 घन मीटर = 35.314 घन फुट
= 0.028 घन लिटर	= 1.308 घन गज
1 घन गज = 764.5 लीटर	= 28.377 बुशल (अमेरिकी)
= 0 764 घन मीटर	= 27.50 बुशल (ब्रिटिश)
1 बुशल (ब्रिटिश) = 36.368 लिटर	1 लिटर = 61 025 घन इन्च
1 बुशल (अमेरिकी) = 35.238 लिटर	= 0.0275 बुशल (ब्रिटिश)
	= 0 0284 बुशल (अमेरिकी)

1 पिन्ट = 0.57 लिटर	1 लिटर = 1.76 पिन्ट
1 क्वार्ट = 1.136 लिटर	= 0.88 क्वार्ट
1 गैलन = 4.546 लिटर	= 0 22 गैलन
1 गैलन = 4.00 क्वार्ट	
1 क्वार्ट = 2.00 पिन्ट	

भार

1 ग्रेन = 0.065 ग्राम	1 ग्राम = 15.432 ग्रेन
1 औंस = 28.35 ग्राम	= 0.035 औंस
1 पौण्ड = 453.59 ग्राम	1 कि. ग्रा. = 35.27 औंस
= 0.459 कि.ग्रा.	= 2.205 पौण्ड
1 टन = 1016.047 कि.ग्रा.	1 क्विंटल = 100 कि. ग्रा.
	= 220.46 पौण्ड
	10 क्विंटल = 0.9842 टन

□□□